

अक्टूबर
2026



धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष
90

अंक - 10 | प्रति - ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

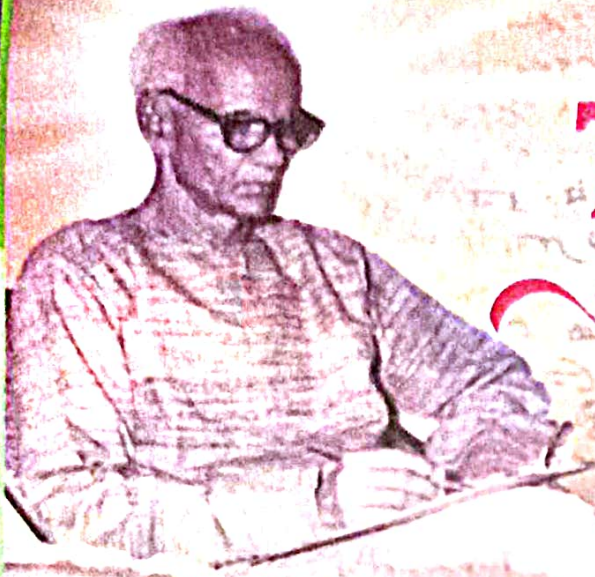


5 ▶ वृक्षारोपण का महत्व समझा जाए

15 ▶ जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान यज्ञ से

35 ▶ चरित्र-निर्माण में सद्विचारों का महत्व

58 ▶ ज्ञान की दीक्षा का पर्व मनाता विश्वविद्यालय



75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति



गायत्री द्वारा दिव्यदृष्टि की प्राप्ति

किसान धैर्यपूर्वक अपने खेतों में श्रम करता रहता है। घर से अन्न ले जाकर उसमें बीज बो देता है। अदूरदर्शिता की दृष्टि से देखा जाए तो उसका यह सब कार्य बेवकूफी से भरा हुआ प्रतीत होगा। रोज-रोज कठिन परिश्रम करना और शाम को खाली हाथ वापस लौट आना, साथ ही घर में रखा हुआ अन्न भी मिट्टी में बिखेर आना, यह भी कोई समझदारी की बात नहीं मालूम होती। पर दूरदर्शी किसान यह जानता है कि मेरा यह परिश्रम कभी नष्ट नहीं जा सकता। इसका समुचित परिणाम मुझे मिलकर ही रहेगा। वह मिलता भी है। समयानुसार खेती पकती है और किसान का घर धन-धान्य से पूरा कर देती है, उसका परिश्रम सफल हो जाता है।

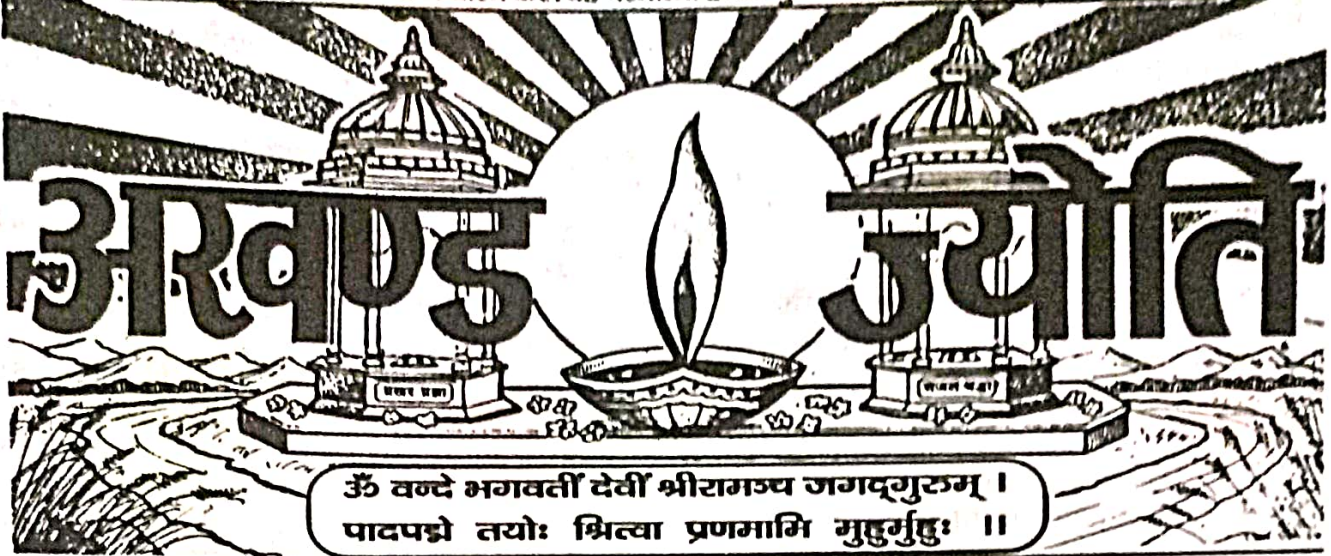
किसान जैसी दूरदृष्टि को अपनाकर हम भी अपने जीवन को सुख-शांति की राशि से भर सकते हैं। विद्यार्थी जानता है कि मुझे आगामी जीवन में सफलता और प्रतिष्ठा प्राप्त करनी है, तो आरंभ में कठिन परिश्रमपूर्वक विद्याध्ययन करना पड़ेगा। विद्याध्ययन के समय उसका समय, श्रम और पैसा सभी लगता है, तत्काल उसे कुछ लाभ नहीं होता, वरन हानि ही रहती है, परंतु यह निश्चित है कि इस हानि की आगे चलकर ब्याज समेत भरपाई हो जाती है। विद्यार्थी और किसान का दृष्टिकोण अपनाकर जो लोग आशाजनक भविष्य के लिए आज कठिनाई उठाने को तैयार हैं, उन्हें गायत्री का सदा आज्ञाकारी पुत्र कहा जा सकता है। माता अपने आज्ञाकारी बालकों को दुलारने में कमी नहीं रखती, पर अवज्ञाकारी को दुत्कारने में भी उसे संकोच नहीं होता।

(अखण्ड ज्योति, सितंबर-1951, पृष्ठ, 4-5)



ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

उस प्राणस्वरूप, सुखान्तात्मक, सुखान्तात्मक, भोक्त, सेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतर्स्था में धारण करें। यह परमात्मा हमारी बुद्धि को सम्मान में प्रेरित करे।



ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामाय जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं

शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड
जयसिंहपुरा, मथुरा (281 003)

दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273

मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036,
7534812037, 7534812038, 7534812039

समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।

नया ई-मेल :

akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

क्वाटर्स नं० 9927086290 (केवल मेसेज करें)

वर्ष : 90
अंक : 10
अक्टूबर : 2026
आश्विन-कार्तिक : 2083
प्रकाशन तिथि : 01.09.2026

वार्षिक चंदा

भारत में ट्रेकेबिल सुविधा सहित : 500/-

विदेश में हवाई डाक से : 5200/-

जीवन-विद्या का आलोक केंद्र
देव संस्कृति विश्वविद्यालय (कर्मशाला)

जीवन-विद्या का आलोक केंद्र—देव संस्कृति विश्वविद्यालय विचार से आकार में बदलने लगा। युगऋषि गुरुदेव ने अपने जीवन काल में इस पर विचार किया था। वंदनीया माताजी ने ऐसे किसी विश्वविद्यालय का स्वप्न देखा था, जिससे अनेकानेक जीवन आलोकित हों और जहाँ जीवन-विद्या प्रदान की जाए। ऋषि-विचार, ऋषि-वाणी, ऋषि-स्वप्न कभी मिथ्या नहीं होते। उनके मन का स्फुरण, जीवन व जगत् में अंकुरण बनता है। जो मनोभूमि में स्फुरित हुआ, समझो वह जगत् में अंकुरित हुआ। वर्ष—2001 ई. में देव संस्कृति महाविद्यालय के रूप में इसकी शुरुआत हुई। यही गुरुजी-माताजी की मनोभूमि में हुए स्फुरण का धरती पर अंकुरण था। वर्ष—2002 ई. में इसने जीवन-विद्या के आलोक केंद्र—देव संस्कृति विश्वविद्यालय का स्वरूप पा लिया। युगऋषि गुरुदेव के विचारों ने आकार लिया। वंदनीया माताजी का स्वप्न साकार हुआ। गुरुदेव इसके कुलपिता, वंदनीया माताजी इसकी कुलमाता बनकर शिक्षकों, विद्यार्थियों, कर्मचारियों, अधिकारियों के मन-मंदिर में प्रतिष्ठित हुए। कुलाधिपति ने अपनी कुशलता से इसमें नवीन आयाम जोड़े। जो प्रकाश-प्राण उन्हें पूज्य गुरुदेव-वंदनीया माताजी से मिला था, उसे उन्होंने सबमें उदारतापूर्वक वितरित किया। शिक्षकों, कर्मचारियों ने उनमें अभिभावक को देखा। विद्यार्थियों ने अपने स्नेह से सदा सिंचित करने वाले पिता को पाया। गीता व ध्यान की उनकी कक्षाओं ने शिक्षा को विद्या का स्वरूप प्रदान किया। उनके मार्गदर्शन में जीवन प्रबंधन के पाठ्यक्रम के साथ अन्य सभी विषयों के पाठ्यक्रमों की मौलिकता उजागर हुई। यहाँ जो संभव हो पाया, वह संपूर्ण रूप से ऋषियुग की सूक्ष्म-साधना एवं कुलाधिपति के कुशल नेतृत्व की ही सुखद परिणति है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

अक्टूबर, 2026 : अखण्ड ज्योति

विषय सूची

* आवरण—1	1	* समय की पुकार, युगधर्म की हुंकार	40
* आवरण—2	2	* युग ज्योति : वंदनीया माताजी जन्म शताब्दी लेखमाला—2	
* जीवन-विद्या का आलोक केंद्र— देव संस्कृति विश्वविद्यालय	3	* मौन तप की शक्ति	41
* विशिष्ट सामयिक चिंतन वृक्षारोपण का महत्त्व समझा जाए	5	* हमारा युग निर्माण सत्संकल्प—9	
* गायत्री मंत्र की अद्भुत महिमा	8	सफलता मिले, पर नीति पर चलते हुए मिले	44
* शठे शाठ्यं समाचरेत्	10	* ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—211	
* भक्त माधवदास की अद्भुत भगवद्भक्ति	13	आदर्श ग्राम योजना पर शोध	48
* जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान यज्ञ से	15	* युगगीता—317	
* दिव्य जीवन का आधार है श्रद्धा	17	एकनिष्ठ भाव वाली होती है सात्त्विक धृति	51
* पर्व विशेष—विजयादशमी		* परमवन्दनीया माताजी की अमृतवाणी	
धर्म की विजय हो, अधर्म का नाश हो	19	प्रेरणादायी गुरुसत्ता का जीवन	53
* नन्हे पंखों की साहसिक उड़ान	21	* विश्वविद्यालय परिसर से—256	
* भोग की अंतहीन मृगमरीचिका	22	ज्ञान की दीक्षा का पर्व मनाता विश्वविद्यालय	58
* संयम, सदाचार एवं चरित्र-निर्माण	23	* साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला	
* प्रभावी संवाद	25	विश्वराष्ट्र का स्वरूप एवं विधान	60
* आत्मा का शाश्वत स्वरूप	28	* अपनों से अपनी बात	
* पुनर्जन्म	30	महाकाल का आवाहन सुनें	63
* सृजनात्मक जीवन का मनोवैज्ञानिक आधार	33	* मनोनिग्रह	64
* साधना-मंदिर है, यह शरीर	34	* जन्मशताब्दी वर्ष आ गया (कविता)	66
* चरित्र-निर्माण में सद्विचारों का महत्त्व	35	* आवरण—3	67
* कोयल का रहस्यमयी एवं रोचक संसार	37	* आवरण—4	68

आवरण पृष्ठ परिचय

भारतीय संस्कृति का आधार यज्ञ

अक्टूबर-नवंबर-2026 के पर्व-त्योहार

शुक्रवार	02 अक्टूबर	गांधी जयंती/ शास्त्री जयंती	सोमवार	02 नवंबर	अहोई अष्टमी
रविवार	04 अक्टूबर	मातृ नवमी	गुरुवार	05 नवंबर	रमा एकादशी
मंगलवार	06 अक्टूबर	इंदिरा एकादशी	शुक्रवार	06 नवंबर	धनतेरस
गुरुवार	08 अक्टूबर	परमपूज्य गुरुदेव जयंती	रविवार	08 नवंबर	रूप चतुर्दशी/ दीपावली
शनिवार	10 अक्टूबर	पितृमोक्ष अमावस्या	सोमवार	09 नवंबर	अन्नकूट/ सोमवती अमावस्या
रविवार	11 अक्टूबर	नवरात्रारंभ	मंगलवार	10 नवंबर	बेसतुबरस
बुधवार	21 अक्टूबर	विजयादशमी	बुधवार	11 नवंबर	भाईदूज
गुरुवार	22 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी	शनिवार	14 नवंबर	बाल दिवस/ लाभ पंचमी
रविवार	25 अक्टूबर	शरद पूर्णिमा	बुधवार	18 नवंबर	औंला नवमी
सोमवार	26 अक्टूबर	वाल्मीकि जयंती	शनिवार	21 नवंबर	देवोत्थान एकादशी
गुरुवार	29 अक्टूबर	करवा चौथ	मंगलवार	24 नवंबर	गुरुनानक जयंती/ पूर्णिमा



यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —संपादक

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

वृक्षारोपण का महत्त्व समझा जाए



मानवता वर्तमान में पर्यावरण संकट के विषम दौर से गुजर रही है, जिसमें ग्लोबल वार्मिंग, प्रदूषण और जैव-विविधता का नष्ट होना प्रमुख हैं। उनके साथ तेजी से कटते जंगलों और बढ़ते शहरीकरण के कारण पृथ्वी का संतुलन बिगड़ रहा है।

परिणामस्वरूप कई स्थलों पर जैसे मानवीय अस्तित्व पर ही संकट के बादल मँडराने लगे हैं। इससे उबरने और जलवायु संकट का सामना करने में वृक्षारोपण सबसे प्रभावी भूमिका निभा सकता है; क्योंकि पेड़-पौधे कार्बन-डाइऑक्साइड सोखते हैं, ऑक्सीजन को छोड़ते हैं, तापमान को नियंत्रित करते हैं, मिट्टी के कटाव को रोकते हैं और एक स्वस्थ जलचक्र को सुनिश्चित करते हैं, जो रहने योग्य एक स्वस्थ परिस्थिति तंत्र का निर्माण करता है।

मालूम हो कि वृक्ष कार्बन-डाइऑक्साइड के प्रमुख अवशोषक हैं। एक परिपक्व वृक्ष लगभग 22 किलो कार्बन-डाइऑक्साइड सोखता है और हमें साँस लेने के लिए शुद्ध ऑक्सीजन प्रदान करता है। इस तरह वृक्ष हमारे लिए ऑक्सीजन आपूर्ति के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन हैं। इसी कारण जंगलों को धरती के फेफड़े कहा जाता है, जो यहाँ रहने वाले समस्त प्राणियों को जीवित रहने के लिए आवश्यक प्राणवायु वितरित करते हैं। बिना वृक्षों के आबाद क्षेत्रों, विशेषकर कंकरीट के जंगलों का रूप ले रहे शहरों और महानगरों में ऑक्सीजन की न्यून मात्रा के चलते घुटनभरा विषाक्त वातावरण हर कोई अनुभव कर सकता है और इसका एक ही प्राकृतिक एवं प्रभावी समाधान है कि अधिक-से-अधिक वृक्षों का रोपण किया जाए।

बढ़ता तापमान भी एक चिंता का विषय है, जिसमें ग्रीनहाउस प्रभाव सक्रिय रहता है। वृक्ष कार्बन सिंक के रूप में कार्य करते हैं, जो ग्रीनहाउस प्रभाव को कम करके वैश्विक तापमान वृद्धि को धीमा करते हैं। अतः वृक्षारोपण के साथ हम आवादी के तापमान में गिरावट ला सकते हैं। दैनिक जीवन में भी गरमी के दिनों में हम बरगद, नीम, पीपल, आम, खेजड़ी, देवदार आदि के गहन छायादार वृक्षों-तले शीतलता का आनंद ले सकते हैं। सारतः तापमान की समस्या के समाधान में भी वृक्ष अपनी निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं।

वृक्ष प्राकृतिक एयर फिल्टर का भी कार्य करते हैं। वे धूल, धुआँ और हानिकारक गैसों को सोखकर वायु को शुद्ध करते हैं और ऑक्सीजन की आपूर्ति बढ़ाते हैं। भगवान शिव की तरह ये स्वयं विषपान कर दूसरों को प्राणवायु का वरदान देते हैं। इस तरह शहरी क्षेत्रों में पेड़ जहाँ लोगों को छाया प्रदान करते हैं, वहीं इनसे प्राप्त शुद्ध वायु से हृदय रोग और श्वास की बीमारियों में कमी आती है। शहरों में खतरनाक स्तर को पार करते वायु गुणवत्ता सूचकांक (एयर क्वालिटी इंडेक्स) के मध्य वृक्षारोपण के महत्त्व को समझा जा सकता है।

पेड़-पौधों की जड़ें मिट्टी को मजबूती से थामे रहती हैं, जिससे मिट्टी का अपरदन (कटाव) रुकता है। इसी आधार पर वर्षा के दिनों में भूस्खलन से लेकर बाढ़ को रोकने में वृक्ष अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अधिकांशतः भूस्खलन व बाढ़ की घटनाएँ उन क्षेत्रों में अधिक होती हैं, जहाँ वनों का सफाया किया गया हो अथवा सड़क या किसी

अन्य मानवीय हस्तक्षेप के चलते वृक्षारोपण बाधित हुआ हो।

वृक्ष मिलकर वनों का निर्माण करते हैं, जो अनगिनत पशु-पक्षियों और कीटों के प्राकृतिक घर हैं। विदित हो कि पेड़-पौधों की कमी से कई प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं, जिन्हें वृक्षारोपण करके बचाया जा सकता है। गाँव से कस्बे और शहर बनते क्षेत्रों में परंपरागत रूप से विचरण करने वाले पशु-पक्षियों की उपस्थिति न्यून होती जा रही है और उन्हें सघन वन वाले उच्चतर क्षेत्रों में पलायन करते देखा जा सकता है और जहाँ वनों का पूरा तरह सफाया हो रहा हो, वहाँ इन जीव-जंतुओं और पक्षियों को विलुप्त होते देखा जा सकता है। इस पृष्ठभूमि में भी ऐसे चिह्नित क्षेत्रों में वृक्षों का अधिकाधिक रोपण समय की माँग है।

वृक्ष जल को संचित करते हैं और भू-जल स्तर को बढ़ाने में सहायता करते हैं। आश्चर्य नहीं कि पहाड़ी क्षेत्रों में सघन वनों के आस-पास शुद्ध जल के स्रोत अवश्य मिलते हैं। वनों के वृक्षों की जड़ों से निस्सृत होने वाली जल की बूँदें मिट्टी के नीचे रिसकर भूमि के अंदर प्रवाहित होती हैं और एक बिंदु पर एकत्र होकर प्राकृतिक जल-स्रोत के रूप में फूटती हैं और अपने अमृत जैसे औषधियुक्त जल के साथ यात्रियों व वहाँ के निवासियों को कृतार्थ करती हैं।

पेड़ों की जड़ें वर्षा के जल को रोककर भूमि के अंदर भेजती हैं। निश्चित रूप से ऐसे में भू-जल स्तर में सुधार होता है। इस तरह वृक्ष सूखे के प्रभाव को कम करने में सहायक रहते हैं। साथ ही पेड़ वाष्पोत्सर्जन के माध्यम से सही समय पर वर्षा कराने में सहायता करते हैं। इस तरह वृक्ष जल-संरक्षण के साथ जलचक्र के नियमन में भी सहायता करते हैं।

वृक्षों के उपरोक्त महत्व को देखते हुए पर्यावरण संकट की वर्तमान स्थिति में वृक्षारोपण एक पावन कर्तव्य बनता है। यह मात्र एक गतिविधि भर नहीं है, बल्कि अस्तित्व की आवश्यकता है। चारों ओर बढ़ते हुए कंकरीट के जंगलों के बीच साँस लेने के लिए अधिक-से-अधिक पौधे लगाना समय की माँग है। फिर वृक्षों के अनुदान-वरदान अनगिनत

ऋषिगणों में चर्चा चल रही थी। प्रश्न उठा कि प्रभु की कृपा किसी पर हुई, इसका सही मूल्यांकन किस आधार पर किया जा सकता है? महर्षि अंगिरा ने सबकी जिज्ञासा का समाधान किया व बोले—“जब प्रभु की कृपा बरसती है, तो साधक के अंतरंग में सद्गुणों की वृद्धि होती है तथा बाह्य व्यवहार में सुसंस्कारिता परिलक्षित होती है। यदि इतना परिवर्तन न दिखाई पड़े तो समझना चाहिए कि साधक ने साधना नहीं की, मात्र समय गँवाया है और उसकी आवाज ईश्वर तक नहीं पहुँची।”

हैं। मौन तपस्वी की भाँति ये स्वयं कार्बन-डाइऑक्साइड का विषपान कर हमें ऑक्सीजन रूपी प्राणवायु देते हैं और फल, फूल, छाया, ईंधन, आश्रय, चारा, हरियाली, सौंदर्य जैसे अनगिनत अनुदानों के साथ हमारे जीवन को सुख-शांति और आनंद से पूरित करते हैं। संक्षेप में वृक्ष हैं तो हम हैं, वरना बिना वृक्षों के हम अपने अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते।

पर्यावरण संरक्षण की इस चर्चा के मध्य 'डिग्री है पाना तो पाँच वृक्ष है लगाना' के रूप में देव संस्कृति विश्वविद्यालय की एक अनूठी पहल अनुकरणीय है, जो युवाओं को सीधे पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रवर्तित रचनात्मक सप्त आंदोलनों में से एक, पर्यावरण संरक्षण, हरीतिमा संवर्द्धन से जोड़ती है। इस पहल के अंतर्गत छात्र-छात्राओं को वृक्षारोपण का कर्मकांड भर पूरा नहीं करना होता, बल्कि वे इन्हें अनवरत सिंचित करते हैं, इनकी देख-भाल करते हैं, जब तक कि वे मजबूत वृक्ष के रूप में तैयार न हो जाएँ।

पर्यावरण संकट के वर्तमान दौर में इस पहल के महत्त्व को समझा जा सकता है। यदि अपनी

डिग्री के साथ हर विद्यार्थी पाँच वृक्ष लगाता है तो इसका प्रतिफल सामूहिक रूप में मिलकर हजारों-लाखों वृक्षों के रोपण के रूप में सामने आता है, जिसे पृथ्वी को हरी चूनर पहनाकर पर्यावरण संरक्षण क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। विद्यार्थियों के साथ हर शिक्षक एवं नागरिक अपने स्तर पर वृक्षारोपण के इस पुनीत कार्य में अपना भावभरा योगदान दे सकता है। यह न केवल सामूहिक पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा, बल्कि वैयक्तिक रूप से भी जीवन को सुख-शांति एवं आनंद से पूरित करने वाला अनुभव होगा और पीढ़ियों के लिए अनुकरणीय एवं प्रेरक मिसाल होगा। □

अमेरिका में उन दिनों महिलाओं को बहुत स्वतंत्रता नहीं थी और उन्हें स्कूल-कॉलेज शिक्षा ग्रहण करने नहीं भेजा जाता था। वहीं एक छोटे शहर के पादरी की पत्नी लिलियम ने जब लड़कियों के एक स्कूल को बनवाने के लिए प्रयास प्रारंभ किए तो नगर में विरोध प्रदर्शन प्रारंभ हो गए।

लिलियम निडरता के साथ विरोधियों की सभा में पहुँची और बोली—“यह आप लोगों का भ्रम है कि सुशिक्षित महिलाएँ पुरुषों का विरोध करेंगी। विरोध का कारण संकीर्णता होती है, शिक्षा नहीं। महिलाओं का उत्थान हुए बिना देश व समाज का विकास संभव नहीं है। मेरी आपसे विनती है कि इस नेक कार्य का विरोध न करें।”

उसके शब्द विरोधियों के हृदय को छू गए और उनका विरोध सहयोग में परिवर्तित हो गया।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

गायत्री मंत्र की अद्भुत महिमा



गायत्री का अर्थ है—प्राणों का त्राण—रक्षा करने वाली। 'गय' माने प्राण और 'त्री' माने त्राण करने वाली। अस्तु गायत्री मंत्र का अर्थ है—वह मंत्र जो गाने वाले को तार देता है, जो गाने वाले की रक्षा करता है, जो गाने वाले का उद्धार करता है। जो लोग प्रेम से, श्रद्धा से गायत्री मंत्र गाते हैं, जपते हैं, वे अवश्य तर जाते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। हमारे विविध धर्मग्रंथों में गायत्री मंत्र की महिमा का उल्लेख है।

महाभारत के अनुशासन पर्व में महाराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा—“हे पितामह! वह कौन-सा मंत्र है, जिसको जपने से धर्म का भारी लाभ होता है? और जिसको चलते-फिरते, उठते-बैठते, किसी स्थान पर जाते समय, किसी स्थान से आते समय, किसी कार्य को प्रारंभ और समाप्त करते समय, प्रत्येक समय पढ़ा जा सकता है? जिसके जप से आत्मिक आनंद मिलता है? धन-संपत्ति और राज्य मिलता है? जिसके जप से भय का नाश होता है? और जो वेद के अनुकूल है।”

युधिष्ठिर के प्रश्न को सुनकर भीष्म पितामह बोले—“वत्स! जो मनुष्य वेदमंत्र गायत्री का जप करते हैं, उन्हें सुख-शांति, समृद्धि, आनंद सब कुछ प्राप्त हो जाता है। उससे सर्वत्र यश प्राप्त होता है। उसे कोई भी हानि या क्षति नहीं पहुँचा सकता। जाते समय, आते समय, कर्म को प्रारंभ करते समय, समाप्त करते समय, प्रत्येक समय गायत्री मंत्र का जप किया जा सकता है।”

भीष्म पितामह ने, आगे कहा—“वत्स युधिष्ठिर! जो ऋषि लोग जप करते हैं, उन जप करने वालों का यह गायत्री परम जप है। इसलिए ऋषि लोग सदैव से ही इसका जप करते रहे हैं; इसका गायन करते रहे हैं। राजा, वीर-योद्धा, विद्वान चाहे वे सूर्यवंशी, चंद्रवंशी या रघुवंशी रहे हों, वे सभी गायत्री के जप से ही यश, धन, शक्ति और आनंद को प्राप्त हुए हैं। कितनी अपार महिमा है, इस मंत्र की।

“इस गायत्री मंत्र को गुरुमंत्र कहा गया है; क्योंकि गायत्री मंत्र ही साधक की बुद्धि को पवित्र कर उसे सन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करता है। इसलिए प्रत्येक वेद में, प्रत्येक शास्त्र में, प्रत्येक ग्रंथ में गायत्री को इतना सम्मान प्रदान किया गया है। यजुर्वेद में तो बारंबार गायत्री की प्रशंसा आती है। ऋग्वेद और सामवेद में भी आती है। अथर्ववेद में भी गायत्री मंत्र की स्तुति की गई है।

“गायत्री लोक और परलोक, दोनों का सुधार करने वाली है। गायत्री उन सभी पदार्थों को प्रदान करने वाली है, जो इस लोक और परलोक में हमें चाहिए। वेद कहता है—‘गायत्री सर्वप्रथम आयु देती है, किंतु वह कैसी आयु प्रदान करती है—ऐसी आयु जिसमें प्राण हों।’

“आयु के साथ-साथ गायत्री अपने जप करने वाले को प्राण देती है, रोग और निर्बलता उसके पास नहीं आती। यदि आए भी तो शीघ्र ही निवृत्त हो जाती है। आयु और स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि गायत्री संतान भी देती है और क्या देती है? वेद कहता है—‘गायत्री अपने जप करने वाले को पशु,

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

घोड़े, गाय, बैल, धन, अन्न, भूमि, फल, क्षेत्र सभी कुछ देती है, पर मनुष्य की इच्छा यह सब लेकर भी पूरी नहीं होती।'

“आयु, प्राण, संतान, समृद्धि, संपदा मिल जाने के बाद भी उसके मन में एक इच्छा रहती है—कीर्ति की इच्छा। इस बात की इच्छा कि उसका यश, उसकी कीर्ति सर्वत्र फैले। समाज में उसका सम्मान हो और वेद कहता है कि गायत्री निस्संदेह अपने जापक को यश, सुयश और कीर्ति भी अवश्य प्रदान करती है। केवल यही नहीं, वेद तो इससे भी आगे कहता है—‘गायत्री हमें ब्रह्मवर्चस भी प्रदान करती है, जिसे देखते ही लोग उसके समक्ष नतमस्तक हो जाते हैं।’ गायत्री

का जप करने वाले के मुख-मंडल पर तेज होता है।

“ये सात उपलब्धियाँ जो कि गायत्री के जप से जापक को, साधक को, उपासक को, उपलब्ध होती हैं, किंतु इन पदार्थों का संबंध तो इस लोक से है और गायत्री केवल इस लोक का नहीं, परलोक का भी सुधार करती है। इसलिए वेद कहता है—‘इन सबको देकर हे गायत्री माता, तू मुझे छोड़ नहीं देती, बल्कि तू मुझे ब्रह्मलोक में ले जाती है, तू मोक्ष दिला देती है।’

“अस्तु गायत्री जप लोक-परलोक दोनों ही दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सचमुच कितनी अद्भुत है गायत्री मंत्र की महिमा।” □

चंदा वृद्धि-सूचना

सरकारी नीतियों एवं डाकविभाग के नियमों के परिवर्तन से पोस्टेज बढ़ने के कारण भारी मन से अब जनवरी, 2027 से अखण्ड ज्योति का वार्षिक चंदा निम्न प्रकार करना पड़ रहा है—

	वार्षिक	वार्षिक विदेश में (हवाई डाक से)
1. अखण्ड ज्योति हिंदी	500/-	5200/-
2. अखण्ड ज्योति अँगरेजी	270/-	2500/-

पाठकों को अखण्ड ज्योति न मिलने की शिकायतें बनी रहती थीं। अब सभी को ट्रेकेबिल सुविधा सहित (लगभग रजिस्टर्ड जैसी) सुविधाएँ उपलब्ध होंगी।

अब 20 वर्षीय सदस्यता का प्रावधान नहीं रहेगा। पूर्व में बने सदस्यों को यथावत् पत्रिका जाती रहेगी।

इस वृद्धि का प्रभाव सदस्य संख्या पर पड़ सकता है। सभी परिजनों से निवेदन है कि इस संभावित संकट में सदस्य संख्या बढ़ाने का पूर्ण प्रयास करें।

इस शताब्दी वर्ष में हम सबका पुनीत कर्तव्य है कि पूज्य गुरुदेव, वंदनीया माताजी की संदेशवाहक पत्रिका अखण्ड ज्योति को जन-जन तक पहुँचाकर गुरुसत्ता के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करें।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

शठे शाठ्यं समाचरेत्

भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा एवं शांति जैसे मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है, क्योंकि ये व्यक्तिगत जीवन में आत्मकल्याण से लेकर सामाजिक जीवन में लोक-कल्याण के महत्तर उद्देश्य को पूरा करते हुए चहुँमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वस्तुतः ये भारतीय संस्कृति को मूल आत्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं और इसकी सार्वभौम, सार्वकालिक एवं सर्व-समन्वयवादी सनातन संस्कृति के कालजयी आधार रहे हैं।

सत्य और अहिंसा भारतीय संस्कृति के आधार रहे हैं, उपनिषदों का प्रेरक वाक्य सत्यमेव जयते हमारा राष्ट्रीय आदर्श वाक्य भी है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, ऐसा धर्मशास्त्रों का मत रहा है। इसी तरह से अहिंसा को परम धर्म माना गया है, अहिंसा परमो धर्मः—महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास का यह कथन भारतीय संस्कृति के मूल मूल्यों को प्रकाशित करता है।

भारतीय संस्कृति में हर कार्य का उद्देश्य शांति रहा है, जिस कारण हर कार्य को शांतिपूर्वक करने पर विशेष बल दिया गया है। सभी प्राणी सुखी रहें, सबका कल्याण हो और सभी मिल-जुलकर शांतिपूर्वक रहें। यह भारतीय संस्कृति का वैदिक काल से लेकर आज तक ध्येय रहा है। यज्ञ से लेकर हर अनुष्ठान एवं शुभ कार्यों के अंत में किए जाने वाले शांतिपाठ में यही कामना की जाती है।

संस्कृति के इन शाश्वत, सार्वभौम एवं मानवतावादी मूल्यों के आधार पर ही भारतीय संस्कृति को सनातन संस्कृति, मानव संस्कृति, विश्व संस्कृति, देव संस्कृति जैसी उपमाओं से संबोधित किया जाता है।

हिंसा, अशांति और असत्य जैसे तत्त्वों को भारतीय संस्कृति में कोई स्थान नहीं दिया गया है और भारतीय संस्कृति बुराई के बदले बुराई नहीं, बल्कि भलाई करने के पक्ष में रही है। महाभारत में भी कहा गया है कि क्रोध को अक्रोध, दुर्जन को सज्जनता, कंजूस को धन और असत्यवादी को सत्य से जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। इन मूल्यों का निर्वहन विशाल हृदय एवं उदार मनःस्थिति में ही संभव होता है।

आश्चर्य नहीं कि वेदों में इस संदर्भ में प्रार्थना की गई है कि अपने अंदर सामर्थ्य के कारण मैं अंतरिक्ष के समान विशाल हृदय वाला बनूँ। इस तरह उदारता, सहिष्णुता, प्रेम, त्याग, परोपकार जैसे मूल्य भारतीय संस्कृति के आदर्श रहे हैं, जिनके लोमहर्षक उदाहरण भारतीय संस्कृति में भरे पड़े हैं, लेकिन विशेष परिस्थितियों में भारतीय संस्कृति इन जीवनमूल्यों का विवेकसंगत उपयोग करने का भी मार्गदर्शन करती है और 'शठे शाठ्यं समाचरेत्', अर्थात् दुष्टों के साथ तदनुरूप व्यवहार करने का भी संदेश देती है।

जैसे आत्मरक्षा में किया गया प्रतिघात हिंसा की श्रेणी में नहीं आता—इसी तरह अत्याचारी, आततायियों और ऐसे लोगों के प्रति जो निरंतर

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

हिंसा, पाश्विकता एवं ज्यादातियों पर उतारू हों, जिन्हें समझाने का कुछ प्रतिफल न हो, तो इस उक्ति को अपनाने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। भारतेन्दु जी की उक्ति यहाँ लागू होती है कि सीधेन सो सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों।

सामान्यतया भारतीय संस्कृति जैसे को तैसा, टिट फॉर टैट के दर्शन में आस्था नहीं रखती; क्योंकि यदि सब लोग इस विचारधारा का अनुसरण करने लगें, तो समाज में शांति कभी स्थापित नहीं हो सकती। अतः विशेष परिस्थितियों में ही 'शठे शाठ्य समाचरेत्' के विवेकसंगत उपयोग की अनुशंसा की गई है।

वर्तमान हिंसात्मक, अलगाववाद एवं अशांति की परिस्थिति में भारतीय संस्कृति के इन मूल्यों पर विचार करने की आवश्यकता है। संबंधित समस्याओं का समाधान प्रतिशोध पर उतरकर, गोली का जवाब गोली से नहीं, प्रेम से समझाने व विचार-विनिमय से ही संभव है।

प्रतिशोध की भावना का उभरना स्वाभाविक है, लेकिन उस पर संयम रखना संस्कृति का कर्तव्य है। हमारी मृदुलता उनकी कठोरता को दूर कर सकती है। संवेदनशीलता ही मानवीय संबंधों का अन्यतम मापदंड मानी गई है। आत्मीय स्नेह की शक्ति अचूक रहती है, लेकिन इसके साथ प्रतिपक्ष की मानसिकता एवं पात्रता की परख भी आवश्यक हो जाती है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार, विरोधियों को पस्त करने की अपेक्षा उनके हृदय-परिवर्तन से होने वाला सुधार अधिक स्थायी रहता है। प्रेम का वशीकरण मंत्र अमोघ है। प्रेम, प्रेम को उत्पन्न करता है और घृणा, घृणा को जन्म देती है। इस संदर्भ में भारतीय संस्कृति प्रतिशोध को प्रोत्साहित नहीं करती।

पंचतंत्र में कहा गया है—उत्तम प्रकृति का व्यक्ति क्रोधित होने पर भी भलाई का ही कार्य करता है। जिस प्रकार दूध जो स्वभाव से ही मीठा होता है, गरम कर देने पर और भी स्वादिष्ट हो जाता है, लेकिन विशेष परिस्थितियों में वेदों का मत स्पष्ट है। यदि राष्ट्र-रक्षा और दुष्टों के दमन हेतु क्रोध किया जा रहा है तो ऐसा क्रोध मान्य है।

इसी तरह युद्ध की स्थिति में अहिंसा अपवाद हो जाती है। सारतः भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परंपरा हिंसा की अपेक्षा अहिंसा, असत्य की तुलना में सत्यता, अशांति के विपरीत शांति एवं धृणा, द्वेष एवं वैमनस्य के स्थान पर सद्भावना, सहनशीलता, साहचर्य एवं सहमति जैसे मानवीय गुणों की संदेशवाहक रही है। लेकिन विशेष परिस्थितियों में शास्त्र विवेकयुक्त असत्य एवं हिंसा का भी प्रतिपादन करते हैं; जब सामाजिक व्यवस्था, धर्म का साम्राज्य एवं अस्तित्व खतरे में पड़ रहा हो।

जब प्रतिपक्षी सत्य, धर्म, न्याय, अहिंसा और शांति को ताक पर रखकर हिंसा, अत्याचार, अन्याय एवं ज्यादातियों के आसुरी आचरण पर उतारू हो, तो आत्मरक्षा हेतु उसको उसी की भाषा में समझाना आवश्यक हो जाता है। इस तरह भारतीय संस्कृति में आपद्धर्म के रूप में ही हिंसा एवं प्रतिकार का प्रतिपादन है, इसका मौलिक स्वरूप आत्मवत् सर्वभूतेषु, वसुधैव कुटुम्बकम् का ही रहा है। सत्य, न्याय, प्रेम, परोपकार एवं अहिंसा का ही रहा है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जीवनपर्यंत सज्जनता, नीति एवं शांति-पथ पर चलते रहे, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर असुरता के संहार के लिए रावण वध से लेकर आसुरी साम्राज्य का संहार करते हैं। बालि का वध इसी क्रम में घटित होता है।

सर्वविदित है कि भगवान श्रीकृष्ण नीति की, सुलह-शांति एवं संवाद की बात करते

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

रहे, लेकिन जब ये सब विकल्प विफल होते हैं, तो अंत में जरासंध, सहस्रबाहु से लेकर कंस का वध करना पड़ा एवं विधर्मी कौरवों के संहार के लिए महाभारत युद्ध का सरंजाम जुटाना पड़ा। भगवान श्रीकृष्ण का स्वयं का उद्घोष रहा है कि जब-जब धर्म का अस्तित्व खतरे में पड़ता है तो वे धर्म की स्थापना हेतु, सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों के संहार हेतु अवतरित होते हैं—जो सृष्टि में संतुलन की एक प्रक्रिया के अंतर्गत होता है।

आज भी चतुर्दिक आसुरी अशांति-आतंक के दौर में हमें सत्य, अहिंसा और शांति का बाना धारण करते हुए शक्ति का अर्जन करना है, शक्तिशाली बनना है, बल की उपासना करनी है और असुरता की किसी भी दुरभिसंधि से आत्मरक्षा एवं आपद्धर्म के रूप में 'शटे शाट्यं समाचरेत्' के सूत्र को अपनाते हुए धर्म की रक्षा-हित, शास्त्र के साथ शस्त्र लेकर तत्पर रहना है। यही एक सत्य, न्याय एवं औचित्य पर आधारित सामाजिक रचना एवं वैश्विक संतुलन हेतु आवश्यक है। □

गौतमी का पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ। दुःख से विह्वल वह भगवान बुद्ध के पास पहुँची। आग्रह करने लगी कि वे अपनी दिव्यशक्ति से उसे जीवित कर दें।

भगवान बुद्ध बोले—“पुत्री! इसके लिए तुम ऐसा करो कि तुम एक ऐसे घर से जल लेकर आओ, जहाँ किसी की मृत्यु न हुई हो। उस जल को मैं अभिमंत्रित कर दूँगा व उसे तुम अपने पुत्र पर छिड़क देना, वह जी उठेगा।”

गौतमी भागती हुई नगर के प्रत्येक घर में पहुँची। ऐसा कोई घर उसे न मिला, जहाँ कोई मृत्यु को प्राप्त न हुआ हो। उसे भगवान द्वारा दिए गए संदेश का मर्म समझ में आ गया कि जो संसार में आया है, उसका जाना तय है।

इसलिए शोक में समय न गँवाकर, आत्मबोध के पथ पर बढ़ना चाहिए।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

भक्त माधवदास की अद्भुत भगवद्भक्ति



बाल्यावस्था से ही माधवदास धार्मिक प्रवृत्ति के थे। तत्पश्चात् गृहस्थ आश्रम में रहते हुए गृहस्थ धर्म का पालन वे बखूबी करते रहे और जब उनकी धर्मपत्नी अचानक स्वर्ग सिधार गई, तब उनके हृदय में सहसा वैराग्य जाग पड़ा और वे संसार को निस्सार समझकर घर छोड़कर स्वयं को पूर्णरूपेण भगवान को समर्पित करने की तीव्र भावना लिए जगन्नाथपुरी की ओर चल पड़े।

जगन्नाथपुरी पहुँचकर वे समुद्र के किनारे एकांत स्थान में रहते हुए भगवद्ध्यान में तल्लीन हो गए। वे ऐसे ध्यानमग्न हुए कि उन्हें अन्न-जल की भी सुध न रही। भगवान के प्रेम में मग्न, ध्यानमग्न भक्त की ऐसी दशा होना स्वाभाविक ही है। जब वे कई दिनों तक बिना अन्न-जल लिए भगवान के प्रेम में, ध्यान में मग्न रहे तब अंतर्दामी भगवान, दयालु भगवान श्री जगन्नाथ जी को अपने भक्त का भूखे रहना न सहा गया।

भगवान ने तुरंत सुभद्रा जी को आज्ञा दी कि आप स्वयं उत्तम-से-उत्तम सुस्वादु व्यंजन सुवर्ण-थाल में रखकर मेरे भक्त माधव के पास पहुँचा आओ। भगवान की आज्ञा पाकर सुभद्रा जी तुरंत सुवर्ण-थाल में सुस्वादु व्यंजन सजाकर समुद्र किनारे माधवदास जी के पास पहुँचीं, पर उन्होंने देखा कि माधव ध्यान में इतना मग्न है कि उनके आने का भी उसे कोई भान नहीं है।

उन्होंने देखा कि वह आँखें मूँदे प्रभु की परम मधुर मनोहर छवि का ध्यान कर रहा है। अतएव

सुभद्रा जी ने उनके ध्यान में कोई विक्षेप करना उचित न समझा और थाल उनके पास ही रखकर चली आई।

घंटों ध्यानमग्न रहने के पश्चात् जब माधवदास ने आँखें खोलीं तो अपने पास भाँति-भाँति के सुस्वादु व्यंजनों से सजे सुवर्ण-थाल को देख भगवत्कृपा का अनुभव करते हुए उनके आनंदाश्रु, प्रेमाश्रु बहने लगे। उन्होंने सर्वप्रथम भगवान को भोग लगाया और प्रसाद पाकर पुनः ध्यानमग्न हो गए। उधर जब भगवान जगन्नाथ जी के पट खुले तो मंदिर में सुवर्ण-थाल न देखकर पुजारियों ने बड़ा शोर मचाया।

पुरी भर में उस सुवर्ण-थाल की खोज होने लगी, जिसमें भगवान को नित्य भोग लगाया जाता था। सुवर्ण-थाल ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे सभी माधवदास जी के पास पहुँचे और उनकी बगल में रखे सुवर्ण-थाल को देखकर उन्हें चोर समझ उन पर चाबुक बरसाने लगे, पर माधवदास जी ने मुस्कराते हुए सब चोटें सह लीं।

उस रात्रि में पुजारियों को भयंकर स्वप्न दिखाई पड़ा। भगवान ने स्वप्न में कहा—“तुमने मेरे भक्त को चोट पहुँचाई है। मैंने माधव की चोट अपने ऊपर ले ली, अब तुम्हारा सत्यानाश कर दूँगा, नहीं तो माधव के चरणों पर पड़कर अपने अपराध क्षमा करवा लो।” सभी पुजारी निद्रा से अचानक जागकर, दौड़ते हुए रात्रि में ही माधवदास जी के पास पहुँचे और उनके चरणों पर जा गिरे।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

माधवदास जी ने भी उन्हें हृदय से क्षमा कर उन्हें निर्भार कर दिया। सच्चे भगवद्भक्त के यही लक्षण होते हैं। अब तो माधवदास जी के प्रेम की, भगवान के प्रति अनुराग की ऐसी दशा हो गई कि भगवान के स्मरण मात्र से उनके रोम-रोम पुलकित हो उठते, हृदय में भगवान की दिव्य अनुभूति होती, सृष्टि के कण-कण में उन्हें भगवान की सर्वव्यापकता की पल-पल अनुभूति होती।

ध्यान में बैठते ही वे ऐसे मग्न हो जाते कि संसार की और स्वयं की भी कोई सुध न रह जाती। वे भगवद्दर्शन हेतु भगवान के मंदिर में जाते तो प्रभु की मूर्ति को ही एकटक देखते रह जाते, फिर प्रभु की उसी मूर्ति को अपने हृदय में अनुभव करते। दर्शन समाप्त होने पर वे तल्लीन अवस्था में ही मंदिर से बाहर आते और अश्रुपात करते हुए समुद्र किनारे चले जाते। □

भगवान श्रीराम को लीला प्रसंग में राजा दशरथ ने वनवास का आदेश दिया। चलने से पूर्व भगवान ने अपने गुरु महर्षि वसिष्ठ के चरण छूकर जाने की आज्ञा माँगी।

सहज प्रेम में महर्षि वसिष्ठ ने कहा—“राम! जाने की इच्छा नहीं तो मुझे बताना, राजाज्ञा रद्द करा दूँगा।”

मर्यादापुरुषोत्तम बोले—“गुरुदेव! ऐसा न कहें। मुझे सुख की नहीं, दुःख की कामना है।” “ऐसा क्यों तात्?” वसिष्ठ ने प्रश्न किया।

भगवान राम बोले—“गुरुदेव! सुख का साम्राज्य मात्र अयोध्या तक ही सीमित है, पर दुःख तो त्रिलोकपर्यंत है। उससे बचने के स्थान पर, उसे अंगीकार कर लेना ही श्रेष्ठ है।”

महर्षि वसिष्ठ मर्यादापुरुषोत्तम के इस उत्तर को सुनकर भावविभोर हो उठे।

जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान यज्ञ से



भारतीय संस्कृति में 'यज्ञ' केवल अग्नि में आहुति देने की एक प्रक्रिया मात्र नहीं है, बल्कि यह वह आध्यात्मिक विज्ञान है, जो मनुष्य को सीधे परमात्मा से जोड़ता है। शास्त्रों में कहा गया है—'यज्ञो वै विष्णुः' अर्थात् यज्ञ स्वयं भगवान् विष्णु का स्वरूप है। सनातन धर्म के ग्रंथों, वेदों और पुराणों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि यदि कोई भक्त सच्चे मन और विधि-विधान से यज्ञ करता है, तो भगवान् उससे शीघ्र प्रसन्न होते हैं।

'यज्ञ' शब्द संस्कृत की 'यज्' धातु से बना है, जिसके तीन अर्थ होते हैं—देवपूजन, संगतिकरण और दान। देवपूजन का अर्थ है—देवताओं का अर्चन करना। संगतिकरण का तात्पर्य है—समाज को जोड़ना और मिल-जुलकर शुभ कार्य करना। दान अर्थात् अपने स्वार्थ का त्याग कर लोक-कल्याण के लिए आहुति देना, कार्य करना।

यज्ञ के अंतर्गत हम यज्ञाग्नि में घृत, सामग्री, मिष्टान्न आदि वस्तुओं को आहुति के रूप में परमात्मा को अर्पित करते हैं। शास्त्रों के अनुसार, अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है। हम अग्नि में जो भी आहुति डालते हैं, वह सूक्ष्मरूप धारण कर संबंधित देवता तक पहुँच जाती है। जिस प्रकार भोजन करने पर ऊर्जा पूरे शरीर में फैलती है, उसी प्रकार यज्ञ की आहुति से ब्रह्मांडीय शक्तियाँ (देव शक्तियाँ) पुष्ट होती हैं।

जब देवता पुष्ट होते हैं, तो वे प्रसन्न होकर साधक की मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। यही कारण है कि प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि और राजा-महाराजा किसी भी बड़े कार्य की सिद्धि के लिए यज्ञ का ही सहारा लेते थे।

चूँकि अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है, इसलिए जिस देवता के पास भी आप अपनी भेंट, आहुति पहुँचाना चाहते हैं, उसे आप अग्नि में डाल दीजिए। वह भेंट, वह आहुति उस देवता तक पहुँच जाएगी। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में अग्नि को देवताओं को बुलाने वाला पुरोहित और दूत कहा गया है। सूर्य देवता, चंद्र देवता, वायु देवता, वरुण देवता सबका पुरोहित और सबको बुलाने वाली यही अग्नि है। यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं। समय पर वर्षा होती है। सूर्य प्रकाशित होता है। पृथ्वी पुष्ट अन्न उत्पन्न करती है।

यज्ञ से वातावरण की शुद्धि होती है। यह है यज्ञ का वह लाभ, जिसका संबंध इस लोक से है, इस संसार से है, पर यज्ञ का दूसरा लाभ भी है। दूसरे लाभ का संबंध परलोक से है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट कहा है कि यज्ञ में आहुति दी जाती है तो उसके दो रूप बन जाते हैं। वह दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक रूप वायु, जल, आकाश, पृथ्वी को शुद्ध करता है। इन्हें शक्ति प्रदान करता है और मनुष्य के लिए लाभप्रद बना देता है और आहुति का दूसरा भाग, दूसरा रूप मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके वहाँ बैठ जाता है, जहाँ सूक्ष्मशरीर का निवास है और फिर जब जीवन का अंत होता है, जब सूक्ष्मशरीर में लिपटी आत्मा इस शरीर से बाहर निकलती है तो आहुतियाँ इस सूक्ष्मशरीर को लपेटकर इसे ऊपर उठाकर उस लोक में ले जाती हैं, जिसकी इच्छा से ये आहुतियाँ डाली गई थीं। इच्छा जितनी प्रबल हो, श्रद्धा जितनी सशक्त हो, विश्वास जितना दृढ़ हो, उतना ही आहुतियों का रूप शक्तिशाली होता है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

इसलिए शास्त्रों की आज्ञा है—प्रातः-सायं, दोनों काल यज्ञ करो, जिससे कि आहुतियों का दूसरा रूप अधिक मात्रा में एकत्रित हो सके। भगवान यज्ञ से जल्दी क्यों प्रसन्न होते हैं ? इसके पीछे कुछ ठोस आधार हैं।

प्रथम आधार है—निस्स्वार्थ भाव और लोक-कल्याण। जब यज्ञ में अक्सर 'इदं न मम' (यह मेरा नहीं है) का उद्घोष किया जाता है, जब मनुष्य अपने अहंकार और ममता का त्याग करता है, तब ईश्वर का हृदय द्रवित हो उठता है।

दूसरा आधार है—मंत्रों की शक्ति। यज्ञ के दौरान बोले जाने वाले वैदिक मंत्रों की ध्वनि तरंगें वातावरण में सकारात्मकता भर देती हैं और ये मंत्र सीधे ईश्वरीय चेतना को जाग्रत करते हैं।

तीसरा आधार है—पर्यावरण की शुद्धि। यज्ञ से निकलने वाला धुआँ और औषधियाँ प्रकृति को शुद्ध करती हैं। चूँकि संपूर्ण ब्रह्मांड भगवान की ही भौतिक अभिव्यक्ति है और भगवान प्रकृति के कण-कण में वास करते हैं, इसलिए प्रकृति की सेवा प्रत्यक्ष रूप से भगवान की सेवा है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि यज्ञ केवल लकड़ियों को जलाने का नाम नहीं है।

भगवान क्रिया से अधिक 'भाव' के भूखे होते हैं। यदि याजक में, साधक में श्रद्धा, पवित्रता, अनुशासन, समर्पण आदि दिव्य भाव हों तो भगवान तुरंत प्रसन्न होते हैं। बिना श्रद्धा के किया गया यज्ञ केवल धुआँ फैलाता है, पुण्य नहीं। मन, कर्म और वचन की शुद्धता अनिवार्य है।

विधि-विधान और मंत्रों का सही उच्चारण आवश्यक है और अपनी इच्छाओं को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। हर युग में यज्ञ की महिमा रही है। सतयुग और त्रेतायुग में यज्ञ ही धर्म का मुख्य आधार था। भगवान श्रीराम ने रावण वध के पश्चात और राज्य की सुख-शांति के लिए 'अश्वमेध यज्ञ' किया था।

द्वापर युग में महाराज युधिष्ठिर ने 'राजसूय यज्ञ' के माध्यम से भगवान कृष्ण की कृपा प्राप्त की थी। कलिकाल में 'नाम यज्ञ' (भगवान का नाम जप करना) और 'लघु हवन' को भी उतना ही प्रभावशाली माना गया है। भगवान की प्रसन्नता के लिए अलग-अलग प्रकार के यज्ञ किए जाते हैं। जैसे स्वाध्याय और वेदों का पाठ करना ब्रह्मयज्ञ कहलाता है।

अग्निहोत्र और देवताओं को आहुति देना देवयज्ञ कहलाता है। तर्पण और पितरों की प्रसन्नता के लिए किया गया दान पितृयज्ञ कहलाता है। समस्त जीवों (पशु-पक्षी आदि) की सेवा करना भूतयज्ञ कहलाता है और अतिथि सत्कार और दरिद्र नारायण की सेवा करना नृयज्ञ कहलाता है। इन पाँचों यज्ञों को 'पंचमहायज्ञ' कहा जाता है। जो व्यक्ति प्रतिदिन इनका पालन करता है, उस पर भगवान की कृपा सदैव बनी रहती है।

आज की भाग-दौड़ भरी जिंदगी में हम यदि बड़े अनुष्ठान नहीं कर सकते तो छोटे दैनिक हवन, संक्षिप्त गायत्री हवन के माध्यम से भी हम भगवान को प्रसन्न कर सकते हैं। अग्नि में दी गई एक छोटी आहुति भी घर के वास्तु दोष को दूर करती है और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है। यज्ञ से मिलने वाली मानसिक शांति भगवान की उपस्थिति का अनुभव कराती है।

निष्कर्ष रूप में कहें तो यज्ञ भारतीय संस्कृति का प्राण है। यह वह सेतु है, जो मानव को देवत्व से जोड़ता है। जब हम निस्स्वार्थ भाव से अग्नि में आहुति प्रदान करते हैं और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कामना करते हैं, तो भगवान प्रसन्न होकर हमें सुख, समृद्धि और अंततः मोक्ष प्रदान करते हैं। यदि हम अपने जीवन में सचमुच ईश्वरीय कृपा का अनुभव करना चाहते हैं तो हम यज्ञमय जीवन अवश्य अपनाएँ—जहाँ त्याग हो, सेवा हो और अटूट भक्ति हो।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

दिव्य जीवन का आधार है श्रद्धा



मनुष्य के जीवन में यदि कोई सबसे प्रबल शक्ति है तो वह है श्रद्धा। श्रद्धा ही वह आंतरिक बल है, जो साधारण व्यक्ति को असाधारण बना देती है। श्रद्धा से ही विश्वास जन्म लेता है और विश्वास से ही संकल्प शक्ति का पोषण होता है। यह केवल धर्म या ईश्वर में आस्था रखने का नाम नहीं है, बल्कि जीवन के प्रत्येक कर्म को सार्थक बनाने वाली आत्मिक ऊर्जा है।

शास्त्रों में कहा गया है—

**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥**

—गीता, 4/39

अर्थात् जो श्रद्धालु है, संयमित इंद्रियों वाला है और साधना में तत्पर है, वही ज्ञान प्राप्त करता है और फिर शीघ्र ही परम शांति को प्राप्त होता है। एक पौराणिक आख्यान श्रद्धा की शक्ति का जीता-जागता प्रमाण है।

महाभारत में एक प्रसंग आता है कि जब द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की परीक्षा ली, तब अर्जुन की एकाग्रता और श्रद्धा देखकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए। अर्जुन ने अपने गुरु के प्रत्येक आदेश को श्रद्धा से स्वीकार किया और उसी के बल पर वे धनुर्विद्या में अप्रतिम बने। यहाँ तक कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन को गीता का उपदेश इसलिए दिया; क्योंकि वे जानते थे कि अर्जुन श्रद्धालु हैं और गुरु व ईश्वर की वाणी पर पूर्ण विश्वास रखते हैं। श्रद्धा के बिना साधना और उपासना केवल कर्मकांड बन जाती है।

तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11 में कहा गया है—

श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्।

अर्थात् दान हो या तप, व्रत हो या सेवा, यदि श्रद्धा से रहित है तो उसका कोई मूल्य नहीं। रामायण में शबरी का प्रसंग श्रद्धा का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। शबरी एक वनवासी स्त्री थीं, जिनके पास कोई बड़ा ज्ञान, वैभव या विद्या नहीं थी, किंतु उनके हृदय में भगवान राम के प्रति अटूट श्रद्धा थी। इसी श्रद्धा के बल पर उन्होंने वर्षों तक प्रतीक्षा की और जब प्रभु राम उनके आश्रम आए तो उन्होंने प्रेम और श्रद्धा से जूठे बेर अर्पित किए। उस निष्कलुष श्रद्धा ने उन बेरों को भी अमृत बना दिया और प्रभु ने उन्हें बड़े प्रेम से स्वीकार किया।

इसी प्रकार एक अन्य प्रसंग महाभारत में आता है। भीष्म पितामह ने अपने जीवन का समस्त काल व्रत, तप और धर्म के पालन में लगाया। जब वे शरशय्या पर लेटे थे, तब युधिष्ठिर को धर्म की गूढ़ बातें समझाते हुए उन्होंने कहा कि श्रद्धा ही वह शक्ति है, जो मनुष्य को जीवन के अंतिम क्षण तक धर्म में स्थिर रख सकती है। श्रद्धा केवल बाहरी विश्वास नहीं है, यह तो आत्मा की गहराई से उमड़ती हुई अनुभूति है। मनुष्य का चरित्र, उसके संस्कार और उसके कर्म उसी के अनुरूप ढलते हैं, जितनी उसकी श्रद्धा गहरी होती है।

शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है—

श्रद्धामयोऽयं पुरुषः।

—गीता 17/3

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

अर्थात् यह पुरुष श्रद्धा से ही बना है। श्रद्धा के अभाव में ज्ञान अधूरा, तप अधूरा और जीवन भी अधूरा रह जाता है। उदाहरण के लिए, एक विद्यार्थी यदि अपने गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं रखता तो शिक्षा का वास्तविक लाभ नहीं उठा सकता।

एक रोगी यदि चिकित्सक की सलाह पर श्रद्धा नहीं करता तो औषधियाँ भी उतनी प्रभावकारी नहीं होतीं। इसी प्रकार एक साधक यदि गुरु और ईश्वर के प्रति श्रद्धा नहीं रखता तो साधना भी केवल नियम-निष्ठा बनकर रह जाती है। महापुरुषों का जीवन भी इस सत्य की गवाही देता है।

महात्मा गांधी ने 'सत्य' और 'अहिंसा' के मार्ग पर केवल इसलिए अडिग रहकर असंभव को

संभव बनाया; क्योंकि उनके भीतर सत्य के प्रति अपार श्रद्धा थी।

विवेकानंद ने जब शिकागो में अपना प्रसिद्ध भाषण दिया तो उनकी प्रभावशाली शक्ति का आधार केवल उनका ज्ञान नहीं, बल्कि उनकी वाणी में निहित श्रद्धा थी। अतः यह कहा जा सकता है कि श्रद्धा ही जीवन का मूल आधार है।

श्रद्धा जहाँ होती है, वहाँ संदेह और निराशा के लिए स्थान नहीं होता। श्रद्धा जीवन को दिशा देती है, साहस देती है और आत्मा को शक्ति देती है। यही श्रद्धा हमें साधारण मनुष्य से महामानव और भक्त से संत बना देती है। □

गुरु गोविंद सिंह ने अपने 16 वर्षीय पुत्र अजीत सिंह को आज्ञा दी कि मुगलों का आक्रमण हुआ है, जाओ! युद्ध को जाओ। अजीत सिंह युद्ध में कूद पड़ा, पर उसे जीवन गँवाना पड़ा। इसके उपरांत गुरु गोविंद सिंह ने यही आज्ञा अपने दूसरे पुत्र जुझार सिंह को दी।

उसने पिता से पूछा—“पिताजी प्यास लगी है, पहले पानी पी लूँ।” पिता ने कहा—“तुम्हारे भाई के शव के पास खून की नदियाँ बह रही हैं, जाओ! उससे प्यास बुझाना।”

यह सुनते ही जुझार सिंह युद्ध में कूद पड़ा। उन दोनों के बलिदान ने सिखों में ऐसा जोश भर दिया कि दुश्मन को मैदान छोड़ने पर विवश होना पड़ा।

धर्म की विजय हो, अधर्म का नाश हो



भारतीय संस्कृति के विविध पर्वों में विजयादशमी का विशेष स्थान है। यह केवल एक उत्सव नहीं, बल्कि एक गहन आध्यात्मिक संदेश का प्रतीक है—सत्य की असत्य पर, धर्म की अधर्म पर और प्रकाश की अंधकार पर विजय का उद्घोष। यह पर्व हमें स्मरण कराता है कि जीवन के प्रत्येक संघर्ष में अंततः धर्म ही विजयी होता है और अधर्म का विनाश सुनिश्चित है।

विजयादशमी, जिसे दशहरा भी कहा जाता है, आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मनाया जाता है और यह नवरात्र के नौ दिवसीय साधना-काल के समापन का उत्सव है, जिसका महत्त्व केवल ऐतिहासिक या पौराणिक घटनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के आंतरिक संघर्षों का भी प्रतिनिधित्व करता है। इस दिन भगवान श्रीराम द्वारा रावण के वध की कथा स्मरण की जाती है, जो धर्म और अधर्म के मध्य हुए महायुद्ध का प्रतीक है।

रावण, जो अत्यंत विद्वान और शक्तिशाली था, अपने अहंकार और अधर्म के कारण पतन को प्राप्त हुआ। इसके विपरीत, भगवान श्रीराम ने मर्यादा, सत्य, और धर्म का पालन करते हुए विजय प्राप्त की। यह कथा हमें सिखाती है कि केवल ज्ञान और शक्ति पर्याप्त नहीं हैं; यदि उनका उपयोग धर्म के मार्ग पर न हो, तो वे विनाश का कारण बन जाते हैं।

विजयादशमी का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष देवी दुर्गा की उपासना से जुड़ा हुआ है। नवरात्र के दौरान देवी दुर्गा की आराधना की जाती है, जिन्होंने महिषासुर जैसे दैत्य का संहार किया।

यह घटना स्त्री शक्ति, साहस, और न्याय की विजय का प्रतीक है। देवी दुर्गा का यह स्वरूप हमें

यह सिखाता है कि जब अधर्म अपने चरम पर पहुँच जाता है, तब दिव्य शक्ति का प्रकट होना आवश्यक हो जाता है। यह केवल बाह्य दुष्ट शक्तियों का नहीं, बल्कि हमारे भीतर के विकारों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का भी संहार है।

वास्तव में, विजयादशमी का वास्तविक अर्थ बाहरी रावण को जलाने से अधिक, अपने भीतर के रावण का दहन करना है। रावण के दस सिर प्रतीक हैं—दस विकारों के। जब तक हम अपने भीतर के इन दोषों को समाप्त नहीं करते, तब तक सच्ची विजय संभव नहीं।

यह पर्व आत्मचिंतन और आत्मशुद्धि का अवसर प्रदान करता है। हमें यह विचार करना चाहिए कि हमारे भीतर कौन-कौन से दोष हैं, और हम उन्हें कैसे दूर कर सकते हैं। भारतीय परंपरा में यह दिन नए कार्यों के शुभारंभ के लिए भी अत्यंत शुभ माना जाता है।

इसे अभिजीत मुहूर्त का दिन कहा जाता है—जब किसी भी कार्य की शुरुआत सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है। प्राचीनकाल में राजा इस दिन अपने शस्त्रों की पूजा करते थे और युद्ध के लिए प्रस्थान करते थे।

यह परंपरा आज भी आयुध पूजन के रूप में जीवित है, जिसमें लोग अपने औजारों, पुस्तकों, और कार्य से संबंधित साधनों की पूजा करते हैं। इसका अर्थ यह है कि हमारे जीवन में जो भी साधन हैं, वे केवल भौतिक वस्तुएँ नहीं, बल्कि हमारे कर्म और साधना के माध्यम हैं।

विजयादशमी हमें यह भी सिखाती है कि जीवन में संघर्ष अनिवार्य है। श्रीराम को भी वनवास, सीता-हरण और अनेक कठिनाइयों का सामना

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

करना पड़ा, परंतु उन्होंने कभी भी धर्म का मार्ग नहीं छोड़ा। यही कारण है कि अंततः उनकी विजय हुई। यह संदेश हमें प्रेरित करता है कि परिस्थितियाँ कैसी भी हों, हमें सत्य और धर्म का साथ नहीं छोड़ना चाहिए।

इस पर्व का सामाजिक महत्त्व भी अत्यंत गहरा है। दशहरा के अवसर पर विभिन्न स्थानों पर रामलीला का आयोजन होता है, जिसमें श्रीराम की जीवन-गाथा का मंचन किया जाता है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज को नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़ने का माध्यम है। रामलीला के माध्यम से नई पीढ़ी को आदर्श जीवन, कर्तव्य-पालन और नैतिकता का पाठ सिखाया जाता है।

इसके अतिरिक्त, रावण, मेघनाद और कुंभकर्ण के पुतलों का दहन भी इस दिन किया जाता है। यह दृश्य प्रतीकात्मक रूप से यह दर्शाता है कि चाहे अधर्म कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, उसका अंत निश्चित है। जब रावण का पुतला जलता है, तो वह केवल एक परंपरा नहीं होती, बल्कि एक संदेश होता है कि हमें अपने भीतर के अहंकार और दुष्ट प्रवृत्तियों को भी इसी प्रकार जलाकर समाप्त करना चाहिए।

आध्यात्मिक दृष्टि से विजयादशमी आत्मविजय का पर्व है। यह हमें यह समझने का अवसर देता है कि सच्ची विजय बाहरी संसार में नहीं, बल्कि अपने भीतर होती है। जब हम अपने मन को नियंत्रित कर लेते हैं, अपने विकारों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, तभी हम वास्तविक अर्थों में विजयी कहलाते हैं।

यह पर्व हमें आत्मसंयम, अनुशासन, और साधना का महत्त्व समझाता है। आज के आधुनिक युग में, जहाँ भौतिकता और प्रतिस्पर्धा का बोलबाला है, विजयादशमी का संदेश और भी प्रासंगिक हो

जाता है। आज का रावण बाहरी रूप में नहीं, बल्कि हमारे भीतर और समाज में छिपा हुआ है—भ्रष्टाचार, अन्याय, हिंसा, और नैतिक पतन के रूप में। यदि हम वास्तव में विजयादशमी का पालन करना चाहते हैं, तो हमें इन बुराइयों के विरुद्ध खड़ा होना होगा। इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि हम अपने जीवन में धर्म के वास्तविक अर्थ को समझें।

धर्म का अर्थ केवल पूजा-पाठ या अनुष्ठान नहीं है, बल्कि सत्य, न्याय, करुणा, और कर्तव्य का पालन है। जब हम अपने जीवन में इन मूल्यों को अपनाते हैं, तभी हम सच्चे अर्थों में धर्म का पालन करते हैं। विजयादशमी हमें यह भी सिखाती है कि विजय का मार्ग आसान नहीं होता। इसके लिए त्याग, धैर्य, और निरंतर प्रयास की आवश्यकता होती है। श्रीराम की विजय केवल एक दिन में नहीं हुई; इसके पीछे वर्षों का संघर्ष और तपस्या थी। इसी प्रकार, हमारे जीवन में भी सफलता पाने के लिए हमें निरंतर प्रयास करना होगा और अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित रहना होगा।

विजयादशमी एक ऐसा पर्व है, जो हमें आशा, उत्साह, और सकारात्मकता से भर देता है। यह हमें यह विश्वास दिलाता है कि चाहे अंधकार कितना भी गहरा क्यों न हो, एक दिन प्रकाश अवश्य प्रकट होगा। यह पर्व हमें प्रेरित करता है कि हम अपने जीवन में धर्म के मार्ग पर चलें, अपने कर्तव्यों का पालन करें और समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास करें।

आइए, इस विजयादशमी पर हम संकल्प लें कि हम अपने भीतर के रावण का दहन करेंगे, अपने जीवन में सत्य और धर्म को स्थापित करेंगे, और समाज में न्याय और सद्भावना का प्रसार करेंगे। यही इस पर्व की सच्ची भावना है—धर्म की विजय हो, अधर्म का नाश हो। □

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

नन्हे पंखों की साहसिक उड़ान



यह एक ऐसे पक्षी की गाथा है, जिसके शरीर की तुलना लड़ाकू विमान से की जाती है, लेकिन लड़ाकू विमान को भी ईंधन भरने के लिए एक अंतराल के बाद धरती पर उतरना पड़ता है, लेकिन यह पक्षी 11 दिनों तक बिना रुके, बिना कुछ खाए-पिए, बिना सोए उड़ता रहता है और 11,000 किलोमीटर से अधिक दूरी पार करने के बाद ही धरती पर उतरता है।

यह है कहानी 300 से 400 ग्राम के बार-टेल्ड गॉडविट नाम के एक नन्हे-से पक्षी की, जो पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव में अलास्का से उड़ान भरता है और पृथ्वी के दक्षिणी छोर पर ऑस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड क्षेत्र में परिव्रज्या के अंतर्गत हर वर्ष पहुँचता है।

वैज्ञानिकों द्वारा सैटेलाइट टैग की सहायता से लिए गए अध्ययनों में इस पक्षी का नाम गिनीज वर्ल्ड रिकॉर्ड में दर्ज किया गया है। यह पक्षी औसतन 11,000 किलोमीटर से अधिक उड़ता है, लेकिन विगत वर्ष मात्र 5 माह के किशोर गॉडविट ने बिना रुके 13,560 किलोमीटर की उड़ान भर कर विश्व रिकॉर्ड बनाया है।

यह पक्षी लगातार 11 दिन तक उड़ता रहा। बीच में कहीं भी नहीं रुका। इसने उड़ान की शुरुआत 13 अक्टूबर को अलास्का से की थी और 25 अक्टूबर को इसे पूरा किया।

विशेषज्ञों के अनुसार गॉडविट का शरीर लड़ाकू विमान जैसा है और लंबे-नुकीले पंख उसे हवा में तेज उड़ने की क्षमता देते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार, जब यह पक्षी उड़ता है तो अपने शारीरिक अंगों को

सिकोड़ लेता है, इस कारण धरती की तुलना में हवा में उड़ने पर इसका शरीर काफी छोटा हो जाता है। यही खूबी उड़ते समय काम आती है।

इसकी तय की गई दूरी पृथ्वी की पूरी परिधि की लगभग एक-तिहाई रहती है। यह पक्षी बिना रुके इतनी दूरी कैसे तय कर पाता है, यह विचारणीय है। विशेषज्ञों के अनुसार 11,000 किलोमीटर से अधिक दूरी को तय करने के लिए यह पक्षी उड़ान भरने से पहले अपने शरीर में भारी मात्रा में चर्बी जमा कर लेता है, जो उड़ान के दौरान ईंधन का काम करती है।

यद् गायत्रे अधिगायत्र माहितम्।

अर्थात् पंचतत्त्वों से बना यह शरीर गायत्रीमय ही है।

साथ ही यह पक्षी लिवर, किडनी, आँत जैसे अपने आंतरिक अंगों को छोटा कर लेता है, जिससे हवा में शरीर का भार कम रहे। उड़ान के दौरान इसका आधा मस्तिष्क सक्रिय रहता है व यह एक आँख बंद कर नींद लेता है।

शोधार्थियों के अनुसार, इसके मस्तिष्क में विद्यमान क्रिप्टोकोन 4 नामक प्रोटीन और नीले प्रकाश की अंतःक्रिया उसे अपनी मंजिल का दिशाबोध कराती है, लेकिन बिना रुके इतनी लंबी दूरी तय करना अवश्य ही आश्चर्यचकित करता है और इस नन्हे-से पक्षी की अदम्य जिजीविषा के साथ इसके सृजेता ईश्वर की अचूक रचनाधर्मिता के बारे में सोचने के लिए बाध्य करता है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

भोग की अंतहीन मृगमरीचिका

भारतीय संस्कृति में सुख उपभोग को घृणित या त्याज्य नहीं माना गया है, धर्म की मर्यादा में यह जीवन के विकास एवं पूर्णता के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकृत है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के रूप में पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा हमारे महान भारतीय ऋषियों की एक दूरदर्शी एवं सम्यक सोच का परिणाम रही है, जिससे जीवन का लौकिक एवं पारलौकिक समग्र उत्कर्ष सुनिश्चित हो सके, लेकिन भोग-सुख जब अपनी सुनिश्चित सीमा एवं मर्यादा के पार होने लगता है, तो इसके दुष्परिणाम बड़े घातक सिद्ध होते हैं। अतः ऐसी स्थिति में इसे त्याज्य एवं घृणित माना गया है; क्योंकि सर्वप्रथम तो यह व्यक्ति के ही प्राण की फुलझड़ी बनाकर उसके तन-मन को जर्जर बना देता है। व्यक्ति को अपनी ही नजरों में गिरा देता है। व्यक्तित्व की दुर्बलता एवं चारित्रिक पतन का कारण बनता है।

दूसरा अमर्यादित आचरण एवं व्यवहार के लिए समाज एवं राजदंड का भय भी सदैव बना रहता है। यह आशंकित एवं भयग्रस्त मनःस्थिति किसी नारकीय यंत्रणा से कम नहीं रहती। व्यक्ति मन-ही-मन आशंकित रहता है और समाज में एक अपराधी की भाँति विचरण करता है और चाहते हुए भी समाज का वह भला नहीं कर पाता, जिसकी वह इच्छा रखता है।

ऐसे में व्यक्ति सामाजिक दंड से बच भी गया, तो भी वह अपनी अंतरात्मा के सामने तो गुनहगार ही ठहरता है। वह आत्मप्रताड़ना से बच नहीं सकता।

आयुर्वेद शास्त्र में इसे प्रज्ञापराध की संज्ञा दी गई है, जिसे तमाम तरह के मनोरोगों का जनक माना गया है। अपनी अंतर्ध्वनि की दैवी वाणी को अनसुना करना, अपने विवेक का उपयोग न करना, भोग-बुद्धि के बहकावे में आकर मनमाना आचरण एवं व्यवहार दीर्घकाल में व्यक्तित्व के विखंडन का कारण बनते हैं, वही पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में भी जटिल परिस्थितियों में उलझाने के हेतु बनते हैं, जिनके चक्रव्यूह में बाहर निकलना फिर एकाएक सरल नहीं होता।

फिर सुख-भोग की प्रकृति ही ऐसी है कि इसे कोई भी किसी भी प्रकार तृप्त नहीं कर सकता। तन, मन, प्राणसहित पूरी आत्मा को भी इसमें झोंक दें, तो भी इसकी अग्नि शांत नहीं होती। भोग की अंतहीन मृगतृष्णा का कोई भी पार नहीं पा सकता है।

भोग में सुख की तलाश अंततः बालू से तेल निकालने के सदृश साबित होती है, जिसके चलते व्यक्ति अंत में पाप की गठरी को लादे संसार से विदा होता है और पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगता। अतः समय रहते अपनी जीवन-दृष्टि को आध्यात्मिक महापुरुषों के सत्संग एवं स्वाध्याय के साथ सँवारें, अपनी जीवनशैली को सुव्यवस्थित करें, भोग-सुख की निस्सारता को समझते हुए अपने आचरण-व्यवहार को धर्म के अनुरूप संयमित मर्यादित करें, तो जीवन की बगिया हर स्तर पर महक उठेगी। इसमें समय पर सुंदर एवं सुवासित पुष्प खिल उठेंगे, स्वादिष्ट एवं मीठे फल लगने लगेंगे और जीवन इसकी छाया तले शीतलता, शांति एवं आनंद से धन्य हो उठेगा।

संयम, सदाचार एवं चरित्र-निर्माण

संयम, सदाचार एवं चरित्र-निर्माण का पहला आधार है। संयम के आधार पर ऊर्जा के अनावश्यक क्षय, मनोयोग के बिखराव एवं चेष्टाओं के बहकाव को रोका जाता है और उन्हें उत्पादक दिशा की ओर नियोजित किया जाता है।

इस तरह चिंतन, व्यवहार एवं आदतों को साधते हुए व्यक्ति अपने चरित्र-गठन की प्रक्रिया को संपन्न करता है; जबकि असंयम चरित्र-निर्माण की जड़ों पर कुठाराघात करता है और व्यक्तित्व को दुर्बल बनाता है। संयम के अंतर्गत इंद्रिय-संयम सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें भी स्वाद-संयम, दृष्टि एवं जननेंद्रिय का संयम प्रमुख रहता है। इनके माध्यम से व्यक्ति की ऊर्जा का अधिकांशतया क्षरण होता रहता है।

इसमें चारों ओर का दूषित वातावरण, समाज में प्रचलित खोटे चलन इंद्रिय असंयम को प्रोत्साहित करते हैं और एक तरह से ईंधन में घी का काम करते हैं। आश्चर्य नहीं कि समाज के एक बड़े वर्ग को इंद्रिय सुखभोग एवं विलासिता में लिप्त देखा जा सकता है, जिन्हें यह आभास भी नहीं रहता कि वे इसके साथ चारित्रिक पतन एवं सामूहिक दुर्गति की ओर अग्रसर हो रहे हैं, बल्कि इसे फैशन, सभ्यता एवं आधुनिकता के रूप में बड़े गर्व के साथ परोसा जाता है, जो जाने-अनजाने में सांस्कृतिक जड़ों पर कुठाराघात कर रहे होते हैं।

इनके दुष्परिणाम आगे चलकर व्यक्तिगत स्वास्थ्य संकट से लेकर पारिवारिक कलह-क्लेश, सामाजिक विघटन एवं आर्थिक संकट के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। इंद्रिय-संयम से जुड़े सर्वसामान्य सूत्रों का पालन करते हुए व्यक्तिगत, पारिवारिक

एवं सामाजिक स्तर पर ऐसी त्रासद स्थिति से बचा जा सकता है।

स्वाद के अंतर्गत मितभुक्, ऋतभुक्, हितभुक् का स्वर्णिम सूत्र सदैव अनुकरणीय रहता है, जिसके पालन के साथ स्वास्थ्य की रक्षा करते हुए एक नीरोग जीवन की आधारशिला रखी जा सकती है। मितभुक् के अंतर्गत आधा पेट आहार, एक-चौथाई जल, एक-चौथाई वायु के लिए स्थान छोड़ा जाता है। ऋत भोजन के अंतर्गत यथासंभव मौसमी, प्राकृतिक, सात्त्विक एवं पौष्टिक आहार का चयन किया जाता है। हितकारी भोजन के अंतर्गत तन-मन को भाने वाले, अपनी प्रकृति के अनुरूप भोजन का निर्धारण किया जाता है।

इनके साथ साप्ताहिक उपवास का क्रम रखा जा सकता है। माह में पूर्णिमा, अमावस्या, एकादशी या अन्य विशेष तिथियों में भोजन-उपवास संबंधी नियम व्रतों का पालन करते हुए आत्मशुद्धि के साथ स्वास्थ्य लाभ के प्रयोजन को सिद्ध किया जा सकता है। स्वाद-संयम जननेंद्रिय के संयम को भी सरल बनाता है; क्योंकि स्वाद का जननेंद्रिय से सीधा संबंध रहता है।

जितना आहार-विहार एवं खान-पान शुद्ध व सात्त्विक रहेगा, उतना ही जननेंद्रिय का संयम सरल, सहज होगा। इसीलिए योगसाधक के लिए तमोगुणी एवं रजोगुणी आहार को वर्जित बताया गया है। जीवहत्या एवं हिंसा के तत्त्व से युक्त मांस, मछली, अंडे जैसे भोजन का भक्षण जहाँ सर्वथा त्याज्य एवं निंदनीय माना गया है, वहीं लहसुन, प्याज जैसे उत्तेजक पदार्थों का सेवन साधनात्मक संवेदना की दृष्टि से त्याज्य माना गया है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

दृष्टि का असंयम काम विकार को भड़काता है और लापरवाह व्यक्तियों को साधना-पथ से स्खलित करता है। अतः सजग साधक ऐंद्रियक प्रलोभनों से यथासंभव दूर रहते हैं और ऐसे वातावरण में रहने का प्रयास करते हैं, जो सात्त्विकता से ओत-प्रोत हों। साधक स्वयं भी अपने प्रयास के साथ ऐसे वातावरण का सृजन कर सकता है।

कमरे में ऐसे देवमानवों के चित्र लगाए जा सकते हैं, स्वाध्याय के अंतर्गत ऐसे महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़ी जा सकती हैं, जो संयम-सदाचार के आदर्श रहे हों, आदर्श जीवन जीने के लिए प्रेरित करते हों। सोशल मीडिया के दौर में ऐसे महापुरुषों के प्रेरक सत्संग की व्यवस्था सरलता से की जा सकती है।

श्रेष्ठ, चरित्रवान लोगों का संग-साथ इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण रहता है। व्यावहारिक जीवन में यदि ऐसे लोगों का संग न मिल पाए तो 'बुरी संगत से अकेला भला' का सूत्र अपनाया जा सकता है। मन की शांति-स्थिरता हेतु अश्लील, उत्तेजक चर्चा से सर्वथा दूर रहना ही अभीष्ट रहता है।

सिनेमा, टीवी, मोबाइल में उपलब्ध विकार उत्पादक दृश्य भी कुसंग का ही पर्याय रहते हैं, जिनका मायावी आकर्षण साधक के लिए किसी चुनौती से कम नहीं रहता। अतः इन साधनों के सजग उपयोग की आवश्यकता रहती है। ऐसे दृश्यों, वेबसाइट्स एवं वीडियोज से दूर ही रहें, जो भावनाओं को दूषित करते हों, मन को विकारग्रस्त करते हों और इंद्रियों को भड़काकर व्यक्तित्व विखंडन का माध्यम बनते हों।

आजकल शहरों एवं आबादी बहुल क्षेत्रों का वातावरण बहुत दूषित हो चुका है। ऐसे में बीच-बीच में सप्ताह या माह के अंत में एकांत सेवन एवं मौन का सहारा लिया जा सकता है। प्रकृति की गोद में आत्मचिंतन एवं संवाद के साथ जीवन की खोई लय को प्राप्त किया जा सकता है।

तीर्थसेवन एवं तीर्थाटन का इस संदर्भ में बहुत महत्त्व रहता है। इंद्रिय-संयम का सदाचार के साथ सीधा संबंध है और सदाचार का संबंध दृष्टिकोण परिवर्तन के साथ रहता है। इस संदर्भ में विपरीत लिंग के प्रति शुद्ध एवं पावन दृष्टि का अभ्यास अभीष्ट रहता है।

स्त्रियों में आयु के अनुसार माँ, बहन, पुत्री के दर्शन किए जा सकते हैं। इसी तरह पुरुषों के प्रति पिता, भाई, पुत्र की दृष्टि रखी जा सकती है। युग निर्माण सत्संकल्प में 'नर-नारी परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे' का सत्संकल्प इसी भाव को पुष्ट करता है।

नवरात्र में नवदुर्गा के विभिन्न रूपों में नारी के सभी रूपों के दर्शन हर नारी में भगवती के दर्शन के भाव को पुष्ट करते हैं। या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण, मातृरूपेण, शक्तिरूपेण, शांतिरूपेण आदि मंत्रों में यही भाव रहता है। इसी तरह स्त्रियाँ शिव रूप में पुरुषों के दर्शन कर सकती हैं। स्त्री-पुरुष इस जगत् में व्याप्त शिव-शक्ति तत्त्व के दर्शन करते हुए संयम-सदाचार को जीवन का अंग बना सकते हैं।

तुलसी बाबा की उक्ति 'सीयराममय सब जग जानी' में भी इसी भाव-साधना का संदेश मुखरित होता है। इस सर्वसामान्य सूत्रों का पालन, चिंतन-मनन एवं अभ्यास करते हुए इंद्रिय-संयम की साधना को संपन्न किया जा सकता है, जिनके साथ चित्त में शुद्ध सात्त्विक एवं पवित्र भावों का बीजारोपण होता है।

इस तरह मन, वचन एवं कर्म की एकता के साथ संयम-सदाचार का अभ्यास सुदृढ़ चरित्र की नींव रखता है, जिसके आधार पर व्यक्तित्व का भव्य भवन खड़ा किया जा सकता है। संयम, सदाचार एवं चरित्र-निर्माण को ही स्थायी सुख-शांति, सफलता एवं उत्कर्ष का राजमार्ग कह सकते हैं।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

प्रभावी संवाद



संवाद का तात्पर्य है—समान स्तर पर सम्यक रूप से अर्थात् ठीक-ठीक तरह से किया जाने वाला वार्त्तालाप। यह एक उद्देश्यपूर्ण बातचीत करने की कुशलता है। संवाद में अपने विचार, जानकारी, भावनाएँ और अनुभवों को एक-दूसरे के साथ साझा किया जाता है। परस्पर प्रभावशाली ढंग से संवाद स्थापित करना एक कुशलता है।

व्यक्तित्व की ऐसी कुशलता, जिसमें कही गई बातें, विचार या भाव सामने वाले पर गहरा प्रभाव डालते हैं। संवाद-कुशलता प्राप्त कर लेने से जीवन का हर स्तर उन्नत, आकर्षक और प्रभावी बन जाता है। व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक, उसके जीवन में निरंतर संवाद की प्रक्रिया चलती रहती है।

पहला संवाद उसका माँ से ही होता है। इसके आगे की यात्रा भी व्यक्ति संवाद-क्षमता के विकास के अनुरूप ही पूरी कर पाता है। संवेदनशीलता, समझदारी, अनुभव और अभिव्यक्ति के स्तर इस क्षमता को एक कला के रूप में विकसित बनाते हैं। संवाद की कला जिसे हस्तगत हो जाए, फिर उसका जीवन का प्रत्येक संवाद प्रभावी और सार्थक होता है।

संवाद की सफलता का तात्पर्य यह है कि जिस उद्देश्य से कोई बात या भाव, विचार संप्रेषित किया जा रहा हो, उसे उसी स्तर से अन्य लोगों अर्थात् जिनसे कहा जा रहा है, उनके द्वारा ग्रहण कर लिया गया हो।

दूसरा पहलू यह कि सामने वाले ने यदि कोई बात या विचार प्रस्तुत किया है तो उसे ठीक-ठीक

रूप में सुनकर समझ लिया गया हो। कहने की सफलता और सुनने की सफलता, दोनों मिलकर संवाद को पूर्ण बनाते हैं।

संवाद को दो रूपों में समझा जा सकता है—

(i) आंतरिक संवाद, जिसे तकनीकी भाषा में अमौखिक अथवा नॉनवर्बल के रूप में भी समझा जाता है। आंतरिक संवाद में व्यक्ति का मन और उसकी अंतश्चेतना में संवाद की प्रक्रिया घटित होती है।

साधारण जीवन हो अथवा आध्यात्मिक—भीतर निरंतर चिंतन, विचार, कल्पना और भावनाओं की लहरें जीवन की इच्छाओं, उद्देश्यों और संकल्पों से युक्त अंतःचेतना से संवाद करती रहती हैं। जीवन में आने वाले प्रत्येक उतार-चढ़ाव, घटनाओं, दुःख-सुख के क्षणों, मान-अपमान, सफलता-असफलता आदि में व्यक्ति भीतरी संवाद स्थापित करके ही स्वयं को सँभाले रहता है।

कठिन-से-कठिन चुनौतियों, संकटों में भी आंतरिक संवाद की शक्ति ही मनोबल और संकल्पबल को बनाए रखती है। आध्यात्मिक जीवन का तो समूचा मार्ग ही आंतरिक संवाद के माध्यम से पूर्ण होता है। सामान्य जीवन में भी आंतरिक संवाद की कला ही शरीर, प्राण, मन और भावनाओं के स्तर पर संतुलन और सामंजस्य बनाए रखने में कारगर उपाय बनती है।

व्यक्ति की सोच-समझ में, इच्छाओं में और बाह्य स्थिति-परिस्थितियों में तालमेल न हो तो जीवन रुग्ण और समस्याग्रस्त बनते देर नहीं लगती।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

मन और भावनाओं के तल पर ही तो व्यक्ति का सारा व्यक्तित्व और जीवन टिका होता है।

यहाँ पारस्परिक संतुलन और लय होना आवश्यक है, तभी क्षमताओं का समुचित विकास और उपयोग संभव हो पाता है। इसी के लिए आंतरिक संवाद की क्षमता का विकसित होना आवश्यक है।

इस क्षमता को विकसित बनाने वाले उपाय भी सरल, सहज और सर्वसुलभ हैं, जैसे—मौन, मंत्र-जप, ध्यान, प्रार्थना, संगीत, डायरी लेखन, आत्मचिंतन, स्वसंकेत, स्वप्रेरणा आदि अनेक तरह से व्यक्ति अपनी अंतश्चेतना से संवाद स्थापित कर सकता है। दुःख, चिंता, तनाव, संकट की घड़ी में भी इसी तरह के उपाय व्यक्ति को सहजता से सामान्य अवस्था में लाने में अत्यंत सहायक सिद्ध होते हैं।

(ii) बाह्य संवाद, जिसमें मुख्य रूप से वाणी, संकेत, शारीरिक हाव-भाव, लेखन, अभिव्यक्ति, नृत्य, कला, शिल्प आदि अनेक गतिविधियाँ सम्मिलित हैं। प्रमुख रूप से वाणी द्वारा शाब्दिक प्रवाह, विचारों की स्पष्टता और शारीरिक भाव-भंगिमाओं की बाह्य संवाद में महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

व्यावहारिक जीवन में संवाद की कला प्रत्येक स्तर पर जीवन के विकास और सफलता के लिए अत्यंत सहायक होती है। बाह्य संवाद की सर्वाधिक प्रभावी अभिव्यक्ति वाणी से होती है। वाणी के साथ-साथ हाव-भाव का व्यावहारिक कौशल जुड़ जाए तो संवाद की सफलता और बढ़ जाती है।

वाणी और व्यवहार ही में तो व्यक्तित्व की आंतरिक क्षमताएँ, विशिष्टताएँ प्रकट हो पाती हैं। बाहर समाज, दुनिया-व्यक्ति के मन, भावों, विचारों की श्रेष्ठता को उसके संवाद और व्यवहार-कौशल

के द्वारा ही जान पाती है। वाणी से निकले शब्दों के साथ-साथ व्यक्ति की आंतरिक सुदृढ़ता अथवा दुर्बलता का प्रभाव भी संवाद को अच्छी या बुरी स्थिति में पहुँचा देता है।

मन में ग्लानि, कुंठा, ईर्ष्या, क्रोध, दुर्भावना, नासमझी भरी हो तो इनका सीधा प्रभाव संवाद की स्थिति को बाधित करने वाला होता है। देखने में संवाद की प्रक्रिया एक वाणी द्वारा बाहरी अभिव्यक्ति अवश्य प्रतीत होती है, परंतु संवाद की स्थिति और उसमें प्रभावशीलता को उत्पन्न करने वाले स्रोत तो जीवन में आंतरिक क्षमताओं के रूप में ही होते हैं।

इन क्षमताओं को समुचित विकसित बनाकर व्यक्तित्व का अभिन्न हिस्सा बना लिया जाए तो फिर संवाद की कला और कुशलता प्राप्त करना सरल हो जाता है।

व्यक्तित्व में ऐसी क्षमताएँ और कुशलता हो, जिससे हमारी बातों का दूसरों पर गहरा प्रभाव पड़ता हो, तभी प्रभावी संवाद संभव है। संवाद में कुशलता तो निरंतर अभ्यास से प्राप्त की जा सकती है, परंतु इसके पूर्ण संवाद की क्षमताओं के विकास हेतु दृढ़ इच्छाशक्ति, परिश्रम, आंतरिक सजगता और संवेदना की क्षमताओं को व्यक्तित्व में उत्पन्न करना आवश्यक होता है।

इन क्षमताओं का विकास जीवन में मौजूद आंतरिक दुर्बलताओं, ईर्ष्या, द्वेष, आवेग की कमजोरियों को हटाकर ही संभव हो सकता है। नियमित गायत्री मंत्र का जप, स्वाध्याय, मंत्र लेखन, प्रज्ञायोग आदि सरलतम उपायों को दैनिक जीवन में अपनाकर संवाद की इन आंतरिक बाधाओं का सहज समाधान किया जा सकता है। संवाद-क्षमता को प्रभावी बनाने के लिए जिन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, उनमें से पहली है—एक अच्छे श्रोता बनना।

संवाद-प्रक्रिया में आधी भागीदारी श्रोता की भी होती है। अतः केवल अपनी ही बात कहना और सामने वाले की न सुनना संवाद को कमजोर बनाता है। सामने वाले पर अपनी बात थोपना संवाद नहीं है।

दूसरों की बातें, विचार भी ध्यान से सुनना-समझना चाहिए। श्रोता को भी अपनी बात कहने का पूर्ण अवसर देना, उसकी बातें खतम होने का इंतजार करना और उसके द्वारा की गई बातों के प्रति सम्मान का भाव रखना एक अच्छे संवादकर्ता की विशेषता दर्साता है।

दूसरी बात यह कि संवाद में वाणी की स्पष्टता, विचारों और भाषा का प्रवाह होना आवश्यक है। अनावश्यक विस्तार व घुमा-फिराकर बात कहने की अपेक्षा संक्षिप्त-कम शब्दों में सीधे, सरल रूप में संदेश पहुँचाया जाए, ताकि श्रोताओं के सुनने, समझने में कोई बाधा या विकल्प उत्पन्न न हो।

तीसरी कड़ी यह है कि शारीरिक भाषा का भी बातों के साथ-साथ कुशलतापूर्वक प्रयोग किया जाए। वाणी के उतार-चढ़ाव के साथ चेहरे के हाव-भाव, आत्मविश्वास, आँखों का संपर्क आदि अशाब्दिक संवाद के उपाय हैं, जो संवाद कला को प्रभावी बनाते हैं।

ध्यान रहे कि व्यक्तित्व एवं चरित्र की भी एक मौन भाषा होती है, जो किसी भी संवाद को

सफल और सार्थक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मर्यादित और अनुशासित व्यवहार संवाद के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने में अत्यंत सहयोगी रहता है।

संवाद कला का चतुर्थ आयाम है सजगता और संवेदनशीलता से युक्त बनना। स्थान, देश, काल, धर्म, संस्कृति, परंपराओं आदि के स्तर पर श्रोताओं की स्थिति का मूल्यांकन और तदनुकूल संदर्भ अर्थात् उनके मान-सम्मान और गरिमा को ध्यान में रखते हुए अपनी बात कहना।

श्रोताओं की ओर से यदि कोई विपरीत धारणा या विचार रखा जाए तो उसका भी पूर्ण सम्मान करते हुए अपने विषय पर तटस्थ रहने की क्षमता होनी चाहिए। कई बार परिस्थितियाँ विपरीत होती हैं, ऐसे में दृढ़ इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास के बल पर सहज, स्वाभाविक बने रहते हुए संवाद करना उत्तम रहता है।

उक्त महत्वपूर्ण बातों को आधार बनाकर संवाद की कला और कुशलता में हर कोई पारंगत बन सकता है। संवाद के विषय की गहरी समझ, विपरीतताओं का प्रबंधन और आंतरिक सजगता मिलकर संवाद को प्रभावी बना देते हैं। प्रत्येक संवादकर्ता को सफल और सार्थक संवाद स्थापित करने में यहाँ बताए गए उपायों का अवलंबन करना अत्यंत सहायक सिद्ध होगा।

□

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

अर्थात् वह एक ही देव सब प्राणियों में छिपा हुआ है। सर्वव्यापक है, समस्त प्राणियों का अंतर्दामी परमात्मा है। वही सबके कर्मों का अधिष्ठाता, सबका निवास स्थान, सबका साक्षी, चेतनस्वरूप सबको चेतना देने वाला, विशुद्ध एवं गुणातीत है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

आत्मा का शाश्वत स्वरूप



एक बार एक छोटे-से गाँव में एक बालक ने अपने गुरु से पूछा—“गुरुदेव! क्या आत्मा स्त्री होती है या पुरुष?” गुरु मुस्कराए और बोले— “बेटा! आत्मा न स्त्री है, न पुरुष। आत्मा तो केवल आत्मा है। जैसे आकाश का कोई लिंग नहीं होता, वैसे ही आत्मा का कोई लिंग नहीं होता।” यह उत्तर सुनकर बालक चकित रह गया। उसने सोचा—“जब मैं स्वयं को देखता हूँ तो मैं तो स्पष्ट रूप से एक लड़का हूँ। फिर गुरुजी क्यों कहते हैं कि आत्मा का कोई लिंग नहीं होता?”

दरअसल यही भ्रांति हम सबके जीवन में गहराई तक बसी हुई है। हम स्वयं को शरीर मानकर जीते हैं। देह के आधार पर हमें स्त्री और पुरुष का भेद दिखता है, लेकिन यह भेद केवल मायिक है। आत्मा का असली स्वरूप शाश्वत, निर्मल और अचल है।

शरीर जन्म लेता है, बड़ा होता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। शरीर के साथ नाम, गोत्र, भाषा, धर्म, जाति, संस्कार और लिंग जुड़ जाते हैं। इन सबसे हम समाज में एक पहचान बना लेते हैं। परंतु आत्मा इन सबसे निरपेक्ष रहती है। जैसे कोई व्यक्ति वस्त्र पहन लेता है—कभी सफेद, कभी रंगीन, कभी भारी और कभी हलका—वैसे ही आत्मा शरीररूपी वस्त्र धारण करती है।

जन्म के साथ ही उसे कभी पुरुष देह मिलती है, तो कभी स्त्री, लेकिन वस्त्र बदलने से व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप नहीं बदलता। माया का

ताना-बाना इतना सूक्ष्म और गहरा है कि वह हमें यह विश्वास करा देता है कि हम वास्तव में स्त्री या पुरुष हैं।

इससे आगे हम परिवार, संबंध, आकर्षण और मोह के जाल में उलझ जाते हैं। परिणामस्वरूप जीवन केवल देह के स्तर तक सीमित हो जाता है, परंतु आत्मा की वास्तविकता यह है कि वह किसी भी परिवर्तन से अछूती रहती है। वह जन्म, मरण, यश, अपयश, सुख-दुःख से परे है। जैसे सूर्य पर बादल छा जाएँ तो उसकी किरणें क्षणभर के लिए ढक सकती हैं, पर सूर्य स्वयं अप्रभावित रहता है। वैसे ही आत्मा पर परिस्थितियों का धुँधलापन छा सकता है, किंतु उसका स्वरूप निर्मल और शाश्वत ही रहता है।

किसी वृद्ध संत का अनुभव इस तथ्य को और स्पष्ट करता है। वे कहा करते थे—“जब मैं अपने को पुरुष मानता था, तब मैं केवल परिवार तक सीमित था। जब मैंने अपने को शिक्षक माना, तब विद्यार्थी तक, लेकिन जब मैंने अपने को आत्मा के रूप में पहचाना तब मुझे लगा कि संपूर्ण सृष्टि मेरा परिवार है।” आत्मा का बोध हमें संकुचित सोच से निकालकर व्यापक दृष्टिकोण देता है। जब यह समझ आती है कि आत्मा लिंगातीत है, तब किसी प्रकार का अहंकार या हीनता नहीं बचती। न कोई श्रेष्ठ है, न हीन। सब एक ही परमचेतना के अंश हैं।

यदि समाज में यह समझ स्थापित हो जाए कि आत्मा का कोई लिंग नहीं होता, तो स्त्री और

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

पुरुष के बीच का भेदभाव समाप्त हो सकता है।
तब दोनों को समान अवसर और सम्मान मिलेगा।
आत्मा नारीत्व और पौरुष से परे है। वह न जन्म से
बँधती है, न मृत्यु से। न ही उसे कोई बंधन छू
सकता है। उसका स्वरूप शाश्वत है, अमर है,
अडिग है।

यदि मनुष्य इस सत्य को पहचान ले तो जीवन
से मोह, भय और भेदभाव अपने आप दूर हो
जाते हैं।
गुरु का उत्तर आज भी उतना ही प्रासंगिक
है—“आत्मा न स्त्री है, न पुरुष....वह तो केवल
आत्मा है।”

□

एक व्यक्ति भगवान की मूर्ति के सम्मुख जोर-जोर
से सिर पीटता, दहाड़ें मार-मारकर रोता व आँसू
बहाता। उसे ऐसा करते देख, संत ने उससे इस व्यवहार
का कारण पूछा।

उत्तर मिला—“मैं भगवान का भक्त हूँ। भक्ति कर
रहा हूँ।”

संत हँसे व बोले—“पुत्र! भक्ति, भावुकता का नाम
नहीं है। भक्ति का अर्थ तो श्रेष्ठता से प्रगाढ़ स्नेह है। भक्ति
उद्देश्यपूर्ण होती है और उसमें देवत्व के अनुरूप
आत्मविस्तार की भावना का समावेश होता है।

संत आगे बोले—“भक्ति का अर्थ भगवान के आगे
आँसू बहाना नहीं, वरन अपने भीतर उमड़ने वाली श्रद्धा व
करुणा से असंख्य असमर्थों को अनुप्राणित करना है।”

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म संबंधी अगणित किस्से-कहानियाँ हमें शास्त्र-पुराणों में पढ़ने को मिलते हैं, जो हमें अचंभित और आश्चर्यचकित करते हैं, परंतु यह सत्य है कि कर्मानुसार जीवात्मा को नया शरीर, नया जीवन प्राप्त होता है। जब तक जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक उसे जीवनधारण करना ही पड़ता है, उसे पुनर्जन्म लेना ही पड़ता है।

कभी-कभी हमारे आस-पास या अन्यत्र ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जो पुनर्जन्म की पुष्टि करती हैं। एक ऐसी ही घटना महाराष्ट्र के एक छोटे-से शहर में घटी थी। दसवर्षीय बालक मुकेश महाराष्ट्र के एक छोटे-से शहर में अपना दवाखाना चलाने वाले डॉ. पद्माकर का एकमात्र पुत्र था।

डॉ. पद्माकर की ख्याति पूरे शहर में एक सफल चिकित्सक के रूप में थी। एक दिन संध्याकाल में डॉ. पद्माकर अपने बगीचे में बैठे थे। डॉ. पद्माकर की पत्नी और उनका पुत्र मुकेश भी वहीं आकर बैठे।

उस शाम को डॉ. पद्माकर ने अपने यहाँ 'सत्संग का अद्भुत प्रभाव' विषय पर प्रवचन करने हेतु एक विद्वान ब्राह्मण, श्री प्रभाकर त्रिपाठी को आमंत्रित किया था। श्री प्रभाकर त्रिपाठी वहाँ आ चुके थे और उन्होंने अपने प्रवचन का आगाज संत तुलसीदास जी द्वारा रचित एक चौपाई से किया—

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा,
कीचहि मिलइ नीच जलसंगा।

अर्थात् धूल का रज-कण जब पवन का संग पा लेता है तब वह गगन में ऊँचा उड़ने लगता है, पर जब वही धूल-कण पानी के संग मिल जाता है, तब वह कीचड़ बन जाता है। उसी प्रकार जब हम संतों, ज्ञानियों, भक्तों, सज्जनों का संग पाते हैं, तब हमारे गुण निखरते हैं, हम ऊँचे उठते हैं, हमारा आध्यात्मिक उत्थान होता है, पर जब हम कुसंग अर्थात् दुष्ट जनों, अज्ञानी जनों का संग करते हैं तो दुष्ट आचरण, पापाचरण करते हैं, हम पतन की खाई में गिरते हैं और दुःख भोगते हैं।

प्रभाकर त्रिपाठी जी ने आगे कहा—“सत्संग से हम जीवन जीने की कला सीखते हैं। हम सत्कर्म करने को प्रेरित होते हैं और सत्कर्म करने से हमें शुभ फल, मधुर फल की प्राप्ति होती है, जिससे हमारा जीवन सुखी होता है। इस लोक में और परलोक में भी यदि हमें सुख की प्राप्ति करनी हो, तो हमें विवेकवान बनना चाहिए और विवेकवान बनने के लिए हमें सत्पुरुषों का संग, सत्संग करना ही चाहिए; क्योंकि बिना सत्संग के विवेक की प्राप्ति नहीं होती। अपने भीतर सद्गुणों का विकास करने हेतु हमें नित्य साधना, स्वाध्याय और सत्संग करना ही चाहिए। इसी से हम सुख-शांति के साथ-साथ भगवत्प्राप्ति भी कर सकते हैं। और यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है।”

श्री प्रभाकर जी की प्रेरक वाणी जैसे ही पूर्ण हुई की तभी डाक्टर पद्माकर की पत्नी प्रभाकर जी के लिए नीबू-शरबत बनाकर लाने के लिए घर के भीतर गई। उसी दौरान वहाँ बैठे बालक मुकेश को

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

चक्कर आने लगे और वह नीचे घास के ऊपर लुढ़क पड़ा। डॉ. पद्माकर के लिए यह आश्चर्यजनक था; क्योंकि उनके पुत्र मुकेश के साथ यह पहली बार हुआ था।

वह घबरा गए और मुकेश की जाँच करने लगे। मुकेश निस्तब्ध स्थिति में वहीं पड़ा रहा था। अचानक थोड़ी देर में अधमुँदी आँखें खोलते हुए मुकेश बोलने लगा—“आप सब मुझे मेरे घर क्यों नहीं जाने देते हो? मेरी पत्नी चिंता करती है। मुझे उसके पास ले चलो। उसे सांत्वना की खूब जरूरत है, जो मेरे सिवाय कोई भी नहीं दे सकता है।” डॉ. पद्माकर के साथ वहाँ बैठे सभी लोग मुकेश की बातें सुनकर हैरान थे। वहाँ बैठे लोगों को कुछ समझ में नहीं आया। सभी एकदूसरे की तरफ देखने लगे।

प्रभाकर त्रिपाठी जी ने बड़ी स्वस्थता और गंभीरता से बालक मुकेश से प्रश्न करना शुरू किया—“तुम कौन हो?” “मैं कोपरगाँव का व्यापारी रघुनाथी कट्टी हूँ।” मुकेश ने कहा। “तुम अपना घर बता सकते हो?” “बेशक!” बालक ने तैश में आकर जवाब दिया। मुकेश की बातें सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग हैरान थे। तभी अपने बालक की स्थिति से अनजान उसकी माता ठंडे शरबत के पाँच प्यालों के साथ वहाँ पहुँची और वहाँ का दृश्य देखकर वह दंग रह गई।

उसके हाथ से ठंडे शरबत से भरे काँच के ग्लास का ट्रे छूट गया। काँच के बरतन गिरकर टूट गए और शरबत फैल गया। श्री प्रभाकर जी ने उसे समझाया कि उसके पुत्र पर पूर्वजन्म की स्मृति की लहर छा गई है। फिर उन्होंने सबको समझाया कि मुकेश के बताए हुए स्थल पर उसे ले जाना जरूरी है। अर्द्धजाग्रत अवस्था में घास की हरियाली पर पड़े उनके पुत्र को विक्षेप न पहुँचाने की उन्होंने डॉ. दंपती को सलाह दी। डॉ. पद्माकर ने अपने नौकर को गाड़ी लाने के लिए कहा। थोड़ी देर में गाड़ी आ गई और उसमें मुकेश को बिठाया गया।

अन्य लोग भी गाड़ी में बैठ गए और उस कोपरगाँव की ओर चल पड़े, जहाँ मुकेश के अनुसार उसके पूर्वजन्म की पत्नी रहती थी।

थोड़ी देर बाद वे सभी कोपरगाँव पहुँचे। तभी एक सँकरी गली के पास पहुँचते ही मुकेश हर्ष-आवेश में आकर बोल उठा—“ड्राइवर साहब, बस रोक दीजिए गाड़ी, मेरा घर इस गली में ही है। मुझे यहीं उतारकर आप सब चले जाओ।” उसके माता-पिता और प्रभाकर जी ने मुकेश को समझाया कि हम सबों को भी अपने घर तक चलने दो। तभी कुछ कदम की दूरी पर एक घर के द्वार पर मुकेश ने दस्तक दी, और नाम भी पुकारने लगा—“कुमुदिनी, अरे, ओ कुमुदिनी! मैं आ गया हूँ। दरवाजा खोल।”

मुकेश के माता-पिता व प्रभाकर जी मुकेश की अदा को एकटक देखते ही रह गए। तभी दरवाजा खुला। एक अधेड़ उम्र की स्त्री चिंतातुर मुद्रा में द्वार पर आ खड़ी हुई। वह स्त्री घर आने के प्रयोजन के बारे में उन सबों से कुछ पूछे, उससे पूर्व ही मुकेश द्रवित आवाज में पूछने लगा—“प्यारी कुमुदिनी! मैं आ गया हूँ। अब तुम चिंता न करो। तुम क्यों इतनी कमजोर पड़ गई हो?” तभी मुकेश ने उस स्त्री का रोते हुए आलिंगन कर लिया। सभी अपरिचितों की मौजूदगी में मुकेश के प्रेमपूर्ण संबोधन तथा प्रेमावेगभरे आलिंगन के कारण वह स्त्री संकोच में पड़ गई और मुकेश के आलिंगन से सरक गई।

वह कुछ बोलती उससे पूर्व ही पुनः मुकेश ने उसका हाथ पकड़कर पूछा—“इतनी लापरवाही क्यों? मुझे नहीं पहचाना? मैं तुम्हारा पति हूँ। देखो, घर की दीवार के पास के खंभे के भीतर ही मैंने तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिए काफी मात्रा में पैसे रख छोड़े हैं।” इतना कहकर मुकेश ने उस लकड़ी के खंभे की ओर इशारा किया। इतना कहकर मुकेश फिर चक्कर खाकर गिर पड़ा और जागते ही पूर्वजन्म की स्मृति को उजागर करके अपने पूर्वजन्म के विषय में विस्तार से बताया।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

कुमुदिनी खुद असमंजस में थी कि एक बच्चा उसका नाम कैसे जानता है।

एक बच्चा छिपाकर रखी गई संपत्ति के बारे में कैसे जानता है? इसलिए वह मुकेश की बातों पर भरोसा करके उसे अपने पूर्वजन्म के पति के रूप में देख रही है। उसके चेहरे पर प्रसन्नता की लहर छा गई। फिर मुकेश और कुमुदिनी के बीच वार्त्ता होने लगी। कुमुदिनी ने अपने स्वर्गवासी हुए पति के बारे में कई गोपनीय बातें पूछीं और मुकेश ने सारी बातें सच-सच बता दीं।

कुछ जानकारीयाँ तो मुकेश ने अपनी ओर से कुमुदिनी को दीं और एक प्रसंग को याद करते हुए कहने लगा कि क्या तुम्हें याद है वह हादसा, जो एक हनुमान जयंती के तीन दिन पहले हुआ था, जिसमें हम दोनों पति-पत्नी पूजा कर रहे थे कि तभी दीपक की लौ से तुम्हारी साड़ी सुलग उठी थी।

ऐसी अनगिनत गुप्त जानकारीयों से कुमुदिनी को पूर्ण प्रतीति हो गई कि डॉ. पद्माकर के घर में पुनर्जन्म लेने वाला यह बालक वास्तव में उसके पूर्वजन्म का पति ही है। उस औरत का हृदय बोझिल हो गया। वह आश्चर्य में डूब गई और उन सबको अपने घर की ऊपरी मंजिल पर ले गई। ऊपर दीवानखाने की दीवार पर तसवीरें टँगी हुई थीं। उनमें से मुकेश ने अपनी और अपने दोवर्षीय पुत्र की तसवीरों को पहचान लिया।

कुमुदिनी भी अपने जीवन के इतिहास की सारी जानकारी मुकेश के मुँह से एकाग्र होकर सुनती रही। फिर कुमुदिनी 'अभी आई' कहकर घर के भीतर चाय-नाश्ता लाने चली गई। तब तक मुकेश की पूर्वजन्म की स्मृति पुनः विलुप्त हो चुकी थी। उसने अपनी आँखों को मसला और पूछने लगा—“मम्मी! मम्मी!! अभी हम सब कहाँ आए हैं? क्या पापा किसी बीमार व्यक्ति को यहाँ देखने आए हैं? मुझे कुछ याद नहीं आ रहा। क्या मैं नींद में था, तभी आप सब मुझे यहाँ लाए थे?”

उसकी मम्मी ने उसे शांत करते हुए कहा—“हम सब यहाँ कोपरगाँव में आए हुए हैं और थोड़ी देर में ही हम हमारे घर वापस जाएँगे।” मुकेश के सभ्य माता-पिता ने उसे सामाजिक सभ्यता सिखाई थी, इसलिए जब कुमुदिनी उन सबके लिए ब्रेड, बटर, बार्नबीटा आदि लेकर आई तो उसके माता-पिता ने उसे बताया — “पुत्र! यह तुम्हारी कुमुदिनी मौसी हैं। हम लोग इन्हीं से मिलने आए हैं। तुम इनके चरण छूकर इन्हें प्रणाम करो।” मुकेश ने वैसा ही किया।

कुमुदिनी ने भी बालक में आए त्वरित परिवर्तन को भाँप लिया था। मुकेश के बताए लकड़ी के

आदर्शवादी दुस्साहस की ही प्रशंसा होती है। वह सत्य साहस के रूप में उत्पन्न होता है और असंख्यों को अनुप्राणित करता है। श्रेय किस व्यक्ति को मिला, यह बात नितांत गौण है। यह तो झंडा लेकर आगे चलने वाले की फोटो के समान है। जबकि उस सैन्यदल में अनेकों का शौर्य, पुरुषार्थ, झंडाधारी की तुलना में कम नहीं, अधिक ही होता है।

— परमपूज्य गुरुदेव

खंभे के नीचे खुदाई करके जब कुमुदिनी ने देखा तो उसमें गड़ा हुआ एक बक्सा निकला, जिसमें ढेर सारे हीरे-जवाहरात पड़े हुए थे। उस धन को पाकर कुमुदिनी की आर्थिक स्थिति सुधर गई और वह प्रसन्न रहने लगी।

बाद में उसके पुत्र की शादी हो गई थी और वह अपनी बहू और पुत्र के साथ सुखपूर्वक रहने लगी थी। डॉक्टर दंपती अपने पुत्र के साथ अब कोपरगाँव से जाने के लिए अपनी गाड़ी में बैठ चुके थे। अतिशय सत्कार पाकर सभी ने कुमुदिनी को धन्यवाद कहा और गाड़ी चलते वक्त मुकेश ने कुमुदिनी को नमस्ते कहा।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

सृजनात्मक जीवन का मनोवैज्ञानिक आधार

सृजनात्मकता मनुष्य की एक मौलिक विशेषता है, जिसके आधार पर वह समस्या के नए समाधान खोजता है या मौलिक विचारों, वस्तुओं और कलाओं का निर्माण करता है। इस प्रक्रिया में मस्तिष्क की कल्पना, तर्कशक्ति और अवचेतन मन का समन्वित उपयोग होता है। मनुष्य ने इसी आधार पर ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न धाराओं का विकास करते हुए मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति को आज की आश्चर्यजनक अवस्था तक पहुँचाया है।

हर व्यक्ति अपनी रुचि, प्रकृति एवं क्षमताओं के आधार पर मनचाहे क्षेत्र में सृजनात्मकता को अंजाम देता है। गीत-संगीत, भाषा, साहित्य, व्यंजन, कला, सिनेमा से लेकर दर्शन, मनोविज्ञान, अध्यात्म, वैज्ञानिक आविष्कार जैसी विभिन्न गतिविधियों के साथ जीवन के हर क्षेत्र में व्यक्ति कुछ सृजन कर रहा है और समाज के लिए उपयोगी उत्पादों के साथ मानवीय अस्तित्व को और समृद्ध कर रहा है। सृजन की यह प्रक्रिया अधिकांशतः सहज स्वाभाविक रूप में घटित होती है, जिसके मूल में सक्रिय सृजनात्मकता की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से अधिकांश लोग परिचित नहीं होते।

प्रस्तुत है यहाँ सृजनात्मकता का यह पक्ष, जिसकी समझ के आधार पर फिर सृजन एक कठोर श्रम साध्य कार्य के बजाय एक सरल एवं रुचिकर कार्य बन जाएगा। सृजनात्मकता की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया मोटेतौर पर चार चरणों से होकर पूर्ण होती है। जिसका पहला चरण है—तैयारी का। जिसके अंतर्गत व्यक्ति समस्या या विषय को समझता है।

इनसे संबंधित तमाम तरह की सूचनाओं या जानकारीयों को एकत्र करता है, तथ्यों का विश्लेषण करता है और संभावित समाधानों पर विचार करता है।

दूसरा चरण है—ऊष्मायन काल का, जिसके अंतर्गत व्यक्ति समस्या के बारे में सीधे सोचना बंद कर देता है या कोई अन्य काम करने लगता है। इस दौरान अवचेतन मन पृष्ठभूमि में जानकारीयों या सूचनाओं को संसाधित करता है और विचारों को आपस में जोड़ता है।

सृजनात्मकता का तीसरा चरण है, प्रदीप्ति का, जिसे यूरेका मोमेंट या अहा! क्षण भी कहा जाता है। खाते, पीते, टहलते, टेबल पर बैठे ध्यान करते या किसी भी पल जब अचानक मस्तिष्क में विषय से जुड़ा नया विचार सा समस्या का समाधान कौंधता है, जिसकी हम आशा भी नहीं किए होते हैं।

चौथा चरण है—मूल्यांकन एवं कार्यान्वयन का, जिसमें प्राप्त विचार या समाधान की व्यावहारिकता एवं उपयोगिता जाँची जाती है। विचार को ठोस रूप दिया जाता है, त्रुटियों में सुधार किया जाता है और उसे अंतिम उत्पाद या समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

इस तरह अमुक विषय पर एक नई रचना या समस्या का नया समाधान सामने आता है, जो सहज-स्फूर्त रूप में अनवरत प्रयास के आधार पर घटित होता है। इस प्रक्रिया को समझते हुए हम किसी भी नए सृजन-कार्य में इसका सचेतन उपयोग करते हुए कार्य को सरल, सहज एवं रुचिपूर्ण बना सकते हैं।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

साधना-मंदिर है, यह शरीर



प्रत्येक साधक का जीवन संयम, साधना और सेवा का पर्याय होता है। साधना का आरंभ ही शरीर और मन के शुद्धीकरण से होता है। जब तक देह अस्वस्थ और इंद्रियाँ असंयमित रहेंगी, तब तक साधक का अंतःकरण शांति और स्थिरता प्राप्त नहीं कर सकता। अतः शरीर की शुचिता, नियम और सात्त्विकता का पालन साधक के लिए प्रथम साधन है।

शरीर ही साधना का मंदिर है—इसका संतुलन और सामर्थ्य बनाए रखना अध्यात्म की अनिवार्य शर्त है। अस्वस्थता या आलस्य की स्थिति में साधक अपने लक्ष्य से विमुख हो जाता है। अतः आहार, निद्रा और श्रम का संयम साधक के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि ध्यान और जप।

संतुलित आहार केवल शरीर का पोषण नहीं करता, वह मन को भी निर्मल बनाता है। अधिक भोग या स्वाद की आसक्ति साधना की प्रगति में बाधक है। संयमित, हलका और सात्त्विक आहार जीवन में प्रसन्नता, स्पष्टता और ओजस्विता लाता है।

प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि पर्वतों और वनों में रहते हुए भी अपने आहार-विहार का अत्यंत ध्यान रखते थे। कहा जाता है कि महर्षि पतंजलि जब योगसूत्र की रचना कर रहे थे, तब उन्होंने अपने शिष्य से प्रतिदिन केवल उतना ही भोजन ग्रहण करने को कहा, जितना हाथ में समा सके। वे कहते थे—“जो अन्न सीमा में है, वही अमृत है, जो सीमा से बाहर है, वही विष बन जाता है।” इसी सीमितता ने उनके जीवन को अमरता दी और विचारों को दिव्यता।

आज का मानव भले ही भौतिक दृष्टि से अधिक संपन्न हो गया हो, पर असंयम और अनियमितता ने उसके जीवन से संतुलन छीन लिया है। भोग और उपभोग की प्रवृत्ति ने मन को चंचल और शरीर को निर्बल बना दिया है। अतः आवश्यक है कि साधक अपने जीवन में पुनः संतुलन स्थापित करे—संयम, स्वच्छता और सेवा के मार्ग पर चलकर ही वह सच्ची साधना का अधिकारी बनता है।

शरीर की शक्ति और मन की स्थिरता जब एक साथ जुड़ते हैं, तभी साधक आत्मिक ऊँचाइयों को स्पर्श करता है। अस्वस्थ शरीर में स्वस्थ विचार और सत्संकल्प टिक नहीं सकते। इसलिए शरीर की देख-भाल केवल शारीरिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक कर्तव्य है।

सेवा उसी का आधार है, जो स्वयं सशक्त, संतुलित और स्वच्छ हो। जो अपने जीवन में शुचिता रखता है, वही समाज में पवित्रता और करुणा का प्रकाश फैला सकता है। साधक की सच्ची तपस्या तभी पूर्ण होती है, जब उसका जीवन दूसरों के कल्याण में समर्पित हो जाए।

कहा भी गया है—

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्,
शुचौ शरीरे यः करोति स साधकः।
स्वच्छे मनांसि स्वच्छता प्रसूयते,
स्वच्छात्मना लोक कल्याणमाचरेत्॥

यह शरीर ही सभी धर्मों के आचरण का प्रथम साधन है। जो अपने शरीर को शुद्ध रखता है, वही सच्चा साधक है। मन की स्वच्छता शरीर की स्वच्छता से उत्पन्न होती है, और शुद्ध आत्मा ही जगत् के कल्याण का हेतु बनती है। □

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

चरित्र-निर्माण में सद्विचारों का महत्त्व



व्यक्ति का चरित्र उसके विचार, भाव, संस्कार, आदतों, क्रियाओं एवं आचरण-व्यवहार का सम्मिलित रूप कहा जा सकता है, जो किसी के व्यक्तित्व का स्वरूप निर्धारित करता है, उसके जीवन की दशा-दिशा एवं नियति को तय करता है।

चरित्र-निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व रहता है विचार शक्ति का। पूज्य गुरुदेव के शब्दों में जो जैसा सोचता है, वह वैसा करता है और अंततः वैसा ही बनता जाता है अर्थात् विचार ही अपनी परिणति में व्यक्तित्व बनता है और किसी के चरित्र का निर्धारण करता है। यदि विचार उत्कृष्ट हैं तो जीवन के तमाम संघर्षों एवं विषमताओं के बीच भी व्यक्ति श्रेष्ठ पथ पर अग्रसर रहेगा और जीवन में उन्नति के शिखर को प्राप्त होगा तथा यदि व्यक्ति के विचार निकृष्ट रहे, तो वह तमाम उपलब्धियों एवं सांसारिक विभूतियों के बावजूद देर-सवेर पतन-पराभव के गर्त में गिरने के लिए अभिशप्त होगा।

विचारों का प्राथमिक निर्धारण तो परिवार से प्राप्त वातावरण एवं लालन-पालन से होता है और इसका अगला चरण शिक्षण संस्थानों में पूर्ण होता है। वहाँ से जैसे विचार मिलते हैं, उसी अनुरूप चिंतन-चेतना को पोषण मिलता है और वैसे ही आचरण-व्यवहार घटित होते हैं तथा चरित्र का गठन होने लगता है। इस तरह माता-पिता, अभिभावकों एवं गुरुजनों के विचारों का स्तर ही हमारे चिंतन की सीमा एवं ऊँचाई को तय करता है। फिर उसी अनुरूप समाज ढलता है और परिवारों में नई पीढ़ी तक संस्कारों का हस्तांतरण होता है और व्यापक स्तर पर सभ्यता एवं संस्कृतियों की

कहानी आगे बढ़ती है। इन सबके मूल में विचार शक्ति ही सक्रिय रहती है।

इसके अगले चरण में जब युग के श्रेष्ठतम विचारकों के विचारों से संपर्क सधता है, तब विचार शक्ति के नए आयामों से परिचय होता है और अस्तित्व के उच्चतम सत्यों का रहस्योद्घाटन होता है। इसमें स्वाध्याय-सत्संग की केंद्रीय भूमिका रहती है। युग ही नहीं, हर काल के श्रेष्ठतम विचारकों के विचारों से परिचय स्वाध्याय के माध्यम से ही संभव होता है।

वेद-उपनिषद्, रामचरितमानस, भगवद्गीता, षड्दर्शन जैसे आध्यात्मिक ग्रंथों में उपलब्ध ऋषिकल्प व्यक्तियों के चिंतन संग श्रेष्ठतम एवं दिव्यतम विचारों की उच्चतम उड़ान बन पड़ती है। इसी तरह विश्व के श्रेष्ठतम विचारकों की कालजयी रचनाएँ मनोभूमि को गहराई से प्रेरित एवं प्रभावित करती हैं और चरित्र का गहनतम स्तर पर गठन प्रारंभ होता है।

इसी तरह से अध्यात्म-क्षेत्र में देवमानवों के जीवन, विचार एवं व्यक्तित्व-कर्तृत्व विचारों के उत्कृष्टतम स्वरूप से परिचय करवाते हैं और इसके साथ जैसे चरित्र-निर्माण के वटवृक्ष की जड़ों के सिंचन एवं खाद-पानी की प्रक्रिया संपन्न होती है। इसी के प्रकाश में आत्मचिंतन एवं मनन की प्रक्रिया गति पकड़ती है, जो चरित्र-निर्माण के साथ व्यक्तित्व के रूपांतरण के महान कार्य को संभव बनाती है। अतः चरित्र-निर्माण के संदर्भ में विचार शक्ति के महत्त्व को देखते हुए स्वाध्याय-सत्संग के अंतर्गत सही पुस्तकों का चयन एवं महामानवों-देवमानवों का वैचारिक संग-साथ अभीष्ट रहता है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

ये पुस्तकें ऐसी हों, जो जीवन के समग्र एवं सम्यक स्वरूप को प्रकाशित करती हों व इसके सचेतन विकास की क्रमिक प्रक्रिया का प्रकाशपूर्ण मार्गदर्शन करती हों। दिनभर में ये ही विचार फिर दैनिकचर्या का निर्धारण करते हैं। आत्मबोध के पलों में प्रायः ये ही विचार जीवन के समग्र लक्ष्य के अनुरूप सम्यक दिनचर्या का निर्धारण करते हैं, दिन में संपन्न होने वाले कार्यों की सूची प्राथमिकता के आधार पर तैयार होती है। उपासना के पलों में ये ही विचार कल्पना की उच्चतम उड़ान के साथ इष्ट के साथ संवाद एवं संयोग संभव बनाते हैं।

ये विचार स्वाध्याय के पलों में पुराने विचारों को पुष्ट करते हैं और सही-गलत की पहचान करने वाली नीर-क्षीर विवेकबुद्धि का वरदान दे जाते हैं और श्रेष्ठ विचारों की एक सेना तैयार कर जीवन के नकारात्मक प्रवाह को निरस्त करने की सामर्थ्य दे जाते हैं।

ये ही विचार दिनभर के कर्तव्यों का सम्यक निर्धारण एवं पालन संभव बनाते हैं और विचार, भाव एवं क्रियाओं के प्रवाह को श्रेष्ठतम, उदारतम एवं प्रखरतम रूप में सक्रिय रखने का दिशा बोध देते हैं। ये ही विचार विकट पलों में असीम धैर्य का दामन थमाकर इनसे पार होना सिखाते हैं। असुरता के विरुद्ध शौर्य का मोर्चा खोलने व बुराई पर अच्छाई की जीत का विजय पथ ये ही विचार निर्धारित करते हैं।

अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार करने व इनको ठोंक-पीटकर सुदृढ़ करने की राह ये ही सुझाते हैं और जीवन की अग्नि परीक्षाओं के विषम दौर का साहस के साथ सामना कर कुंदन बनकर निखरने का राजमार्ग ये ही विचार प्रशस्त करते हैं। साधना के पलों में ये ही विचार सजग, संयम एवं तप के

संग पुराने अभ्यासों को निरस्त करते हैं और सेवा का अवसर आने पर निष्काम भाव को प्रमुखता देते हुए कर्म को आराधना का स्वरूप देकर कर्मयोग की सिद्धि का पथ प्रशस्त करते हैं तथा गीता के 'योगः कर्मसु कौशलम्' के आदर्श को संभव बनाते हैं।

दिनभर में संयम-सदाचार, सादा जीवन उच्च विचार, शालीनता एवं सहकारिता जैसे सद्गुण इन्हीं विचारों के बल पर संभव होते हैं और दिन के अंत में ये ही विचार तत्त्वबोध के

गायत्र्यां परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्।

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे॥

अर्थात् नरकरूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़कर बचाने वाली गायत्री के समान पवित्र करने वाली, इस धरती व स्वर्ग में कोई नहीं है।

साथ दिनभर का विश्लेषण करते हुए अपने दैनिक क्रियाकलापों को इष्ट के चरणों में अर्पित करते हुए, निद्रादेवी की गोद में विश्रांतिपूर्वक सुलाते हैं और नित्य मृत्यु का अभ्यास करते हुए सहर्ष जीवन के महाप्रयाण तक का अभ्यास करा देते हैं।

इस तरह सद्विचारों की शक्ति चरित्र-निर्माण के हर पक्ष का ध्यान रखते हुए जीवन-निर्माण की महान प्रक्रिया को संपन्न करती है, जिसका आरंभ स्वाध्याय-सत्संग के साथ होता है, विकास आत्मचिंतन और आत्मसुधार के रूप में तथा अंत परसेवा के साथ अपने विचार, भावों एवं क्रियाओं को विराट में अर्पित समर्पित करते हुए होता है, जिनका प्रभाव समवेत रूप में व्यक्ति को पूर्णता के पथ पर आरूढ़ करता है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

कोयल का रहस्यमयी एवं रोचक संसार



कोयल एक रोचक पक्षी है, जो अपनी सुरीली आवाज के लिए जाना जाता है। विश्व की लगभग हर संस्कृति में इससे जुड़ी लोक कथा-गाथाएँ सुनी जा सकती हैं। अंटार्कटिका को छोड़कर विश्व के हर महाद्वीप में इसकी विभिन्न प्रजातियाँ पाई जाती हैं। भारत में इसकी एशियाई प्रजाति के दर्शन होते हैं।

कोयल के साथ कई रोचक एवं रहस्यमयी पहलू जुड़े हुए हैं, जिन पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है। कोयल एक शरमीला पक्षी है, जो अधिकांशतः वृक्षों की सघन पत्तियों की छाया में विचरण करता है। अतः आसानी से दिखाई नहीं देता। इसे धरती पर उतरते भी नहीं देखा जाता।

इसी कारण हम प्रायः कोयल को गाते हुए तो सुनते हैं, लेकिन इसको देख नहीं पाते। कोयल एक आलसी पक्षी है, जो अपनी कम हलचल के लिए जाना जाता है। ये लंबे समय तक एक ही स्थान पर बैठी रहती है। इस गतिहीन व्यवहार के कारण इसे विशेष रूप से आलसी पक्षी माना जाता है। साथ ही कोयल को चतुर पक्षी भी माना जाता है।

अन्य पक्षियों की भाँति कोयल स्वयं घोंसला नहीं बनाती और न ही अंडे सेती है या चूजों को पालती है। वह ये सारे कार्य दूसरे पक्षियों से करवाती है। मादा कोयल प्रायः कौए के घोंसले में अपने अंडे देती है। कोयल के अंडे पोषिता के अंडों से मिलते-जुलते होते हैं, जिससे वह उन्हें आसानी से पहचान नहीं पाती। कई बार तो कोयल कौए के

घोंसले के अंडों को गिराकर अपना अंडा उसमें रख देती है।

इस तरह कोयल परजीवी प्रथा के लिए जानी जाती है, जो अपने अंडे दूसरे पक्षियों के घोंसलों में देती है। कोयल में नर और मादा, दोनों के रंग-रूप व आवाज में भिन्नता होती है। नर कोयल रंग-रूप में कौए से थोड़ा छोटा व लंबी पूँछ लिए होता है; जबकि मादा कोयल भूरे, चितकबरे रंग की होती है।

नर कोयल कू-कू कर सुरीली आवाज में गाता है व यह चमकदार काले रंग का होता है, जिसमें नीले रंग की आभा छिटकती रहती है। इसकी आँखें सुर्ख लाल रंग की होती हैं। मादा कोयल गाती नहीं है, बल्कि किक-किक-किक जैसी तीखी आवाज निकालती है। नर कोयल क्यों गाते हैं, यह भी विचारणीय है। प्रायः वसंत ऋतु के दौरान कोयल की मधुर आवाजें सुनाई देना प्रारंभ होती हैं।

मान्यता है कि नर कोयल मादाओं को आकर्षित करने के लिए गाता है। यह आवाज लंबी होती है, जो सामान्य छोटी आवाजों से भिन्न होती है। साथ ही इस तीखी आवाज के साथ नर कोयल अपनी सीमा का भी निर्धारण करता है और दूसरे नर कोयल को इसके क्षेत्र से दूर रहने के लिए सचेत करता है।

कोयल की एशियाई प्रजाति भारतीय उपमहाद्वीप और दक्षिण पूर्व एशिया में पाई जाती है। म्यांमार, इंडोनेशिया, सिंगापुर, मलेशिया, थाइलैंड जैसे देशों में यही प्रजाति पाई जाती है। इस

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

कोयल को प्रातः तीन बजे जागरण से लेकर दिनभर और रात तक लोगों को गीत सुनाते देखा जा सकता है।

हालाँकि कुछ लोग इसकी अनवरत तेज ध्वनि से उकता भी जाते हैं। कोयल पक्षी की औसतन आयु 12 से 14 वर्ष की होती है। इस तरह से कोयल की आवाज प्रायः वसंत ऋतु के आगमन और प्रजनन ऋतु के शुभारंभ से जुड़ी होती है।

अप्रैल से लेकर अगस्त माह तक इसे सुना जा सकता है। वसंत के आगमन का संकेत होने के कारण यह शुभ मानी जाती है। आध्यात्मिक रूप से कोयल की आवाज नवीनीकरण, उर्वरता और नए शुभारंभ का प्रतीक मानी जाती है।

कई क्षेत्रों में इसकी पहली आवाज सुनने पर इसे शुभ शकुन मानते हुए मुँह मीठा किया जाता है। कोयल को गरमी के दिनों में भी गाते देखा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह गरमी से राहत के लिए भी पुकार कर रही हो।

बारिश की फुहार के बाद फिर कोयल की आवाज को नहीं सुना जाता और सरदियों में कोयल गरम क्षेत्रों की ओर पलायन कर जाती है और ठंड से बचने के लिए प्रायः भारत के दक्षिणी भागों या अन्य गरम क्षेत्रों में चली जाती है। भारतीय शास्त्रों में कोयल अर्थात् कोकिला को अत्यंत पवित्र, सौंदर्यपरक और दार्शनिक महत्त्व वाला पक्षी माना गया है।

पौराणिक मान्यताओं के अनुसार, जब माता सती ने अपने पिता दक्ष के यज्ञ में आत्मदाह किया था तो उसके पश्चात् पुनर्जन्म से पहले एक हजार दिव्य वर्षों तक कोकिला के रूप में समय बिताया था।

यह रूप उन्होंने शिव की आज्ञा न मानने के प्रायश्चित्तस्वरूप लिया था। आश्चर्य नहीं कि देश के कुछ भागों में आज भी आषाढ़ माह में महिलाओं द्वारा कोकिला व्रत रखा जाता है, जिसमें भगवान शिव और कोयल स्वरूप माता पार्वती जी की पूजा की जाती है।

यह अखंड सौभाग्य, दांपत्य जीवन में खुशहाली और मनचाहे वर की प्राप्ति के लिए किया जाता है। प्राचीन ग्रंथों में कोयल को परभृत अर्थात् दूसरों द्वारा पाला गया कहा गया है, जो इस बात का प्रमाण है कि भारतीय ऋषि इस तथ्य से परिचित थे कि कोयल अपने अंडे कौए के घोंसले में देती है।

मनुस्मृति में कोयल को प्रकृति का एक अभिन्न अंग मानते हुए इसे हानि न पहुँचाने या न मारने का कड़ा निर्देश दिया गया है, जिसे जीव संरक्षण का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है। भारतीय शास्त्रों में कोयल को प्रेम और काम के देवता, कामदेव के घनिष्ठ मित्र एवं सहचर वसंत का वाहन माना गया है।

कई स्थानों पर कामदेव के रथ को कोयलों द्वारा खींचते हुए भी दर्साया गया है, जो वसंत और प्रेम का प्रतीक है। वाल्मीकि रामायण में भगवान श्रीराम वनवास के दौरान लक्ष्मण से प्रकृति की सुंदरता का वर्णन करते हुए कोयल की मधुर कूक की प्रशंसा करते हैं।

महाभारत में शकुंतला और दुष्यंत के संवाद में कोयल के व्यवहार के सुंदर उदाहरण के साथ सत्य और पालन-पोषण की बात समझाई गई है। यह भी पौराणिक मान्यता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने शनिदेव को कोयल के रूप में दर्शन दिए थे। यह घटना नंदगाँव के समीप स्थित एक वन में घटी थी, जिसे अब कोकिला वन के रूप में जाना जाता है।

आश्चर्य नहीं कि कोयल की कूक वृंदावन की सुंदरता का एक अभिन्न हिस्सा मानी जाती है। वैष्णव संप्रदाय में कवियों और संतों की रचनाओं में कोयल को ईश्वर से जुड़ाव के प्रतीक के रूप में देखा जाता है। कोयल की आवाज से भक्त को अपने प्रियतम भगवान की याद आती है। भक्त अपनी पीड़ा और प्रेम का संदेश कोयल के माध्यम से भगवान तक पहुँचाने का आग्रह करते हैं।

इस तरह कोयल की आवाज भक्तों के लिए आध्यात्मिक तड़प का प्रतीक है। इस तरह कोयल एक रोचक एवं रहस्यमयी पक्षी है, जिसके साथ कई विशेषताएँ एवं किंवदंतियाँ जुड़ी हुई हैं।

दर्शक व श्रोता अपने-अपने भाव एवं मनःस्थिति के अनुरूप इनके भिन्न-भिन्न अर्थ लगा सकते हैं, जिसमें विरह वेदना, प्रेम और आध्यात्मिक पिपासा का भाव अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। □

सृष्टि-निर्माण करने के उपरांत पितामह मनु धीर भाव से बैठ गए। निकटस्थ ऋषियों ने पूछा—“पितामह! वेदों का सार महाप्रज्ञा क्या है?”

पितामह ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया—

अष्टादशसु विद्यासु मीमांसाति गरीयसी।

ततोऽपि तर्कशास्त्राणि पुराणांतेभ्य एव च॥

ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिर्द्विज।

ततोऽप्युनिषच्छ्रेष्ठा गायत्री च ततोऽधिका॥

दुर्लभा सर्वमंत्रेषु गायत्री प्रणवान्विता।

न गायत्रसाधिकं किञ्चित्तमहीषु परिगीयते॥

अर्थात् अठारह विद्याओं से मीमांसा बड़ी है, उससे तर्कशास्त्र बड़े हैं, तर्कशास्त्र से धर्मशास्त्र बड़े हैं। धर्मशास्त्र से श्रेष्ठ श्रुतियाँ हैं, पर श्रुतियों से भी श्रेष्ठ गायत्री हैं। गायत्री से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

समय की पुकार, युगधर्म की हुंकार



गीता के स्वर महाभारत की रणभूमि में गूँजे थे, जब अर्जुन विषादग्रस्त होकर धर्मयुद्ध में अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर युद्ध से पलायन का मन बना बैठे थे। भगवान श्रीकृष्ण के गीता ज्ञान की अमृत संजीवनी के साथ अर्जुन की मोहनिद्रा टूटी थी और वे महाभारत युद्ध के लिए उठ खड़े हुए थे। साथ ही यह युगांतरीय संदेश भी प्रसारित हुआ था कि जहाँ भी अर्जुन और श्रीकृष्ण का मेल होगा, वहीं गीताज्ञान का अमृत संदेश धर्मयुद्ध में विजयश्री को सुनिश्चित करेगा।

बिना श्रीकृष्ण के दुर्योधन को अधर्म के पक्ष में खड़ा होने के कारण भगवान श्रीकृष्ण की नारायणी सेना के साथ होने पर भी हार का सामना करना पड़ा था। गीता का यह संदेश आज भी प्रासंगिक है। आज भी चतुर्दिक विषम परिस्थितियों के मध्य स्थिति महाभारत से कम विकराल नहीं है, जब चहुँओर अधर्म का बोलबाला है, असुरता जीवन के हर पक्ष पर हावी है, वह चाहे जीवन का बाह्य पक्ष हो या व्यक्ति की अंतश्चेतना।

ऐसे में हर सुधी व्यक्ति एक शिष्य के रूप में अर्जुन बनकर दोहरी भूमिका में युद्ध के मैदान में खड़ा है। एक ओर आंतरिक देवासुर संग्राम चल रहा है, तो दूसरी ओर बाहर देवत्व एवं असुरता की पक्षधर शक्तियों के मध्य महासंग्राम छिड़ा हुआ है।

सद्गुरु के स्वर उनके युगसाहित्य एवं अमृतवाणी के रूप में स्वाध्याय-सत्संग एवं मार्गदर्शन के लिए सहज रूप से उपलब्ध हैं और अंतर्वाणी एवं विवेक के स्वरों में हर साधक को सजग-सचेत कर रहे हैं, नित नूतन संदेश निर्देशित कर रहे हैं।

इस बाह्याभ्यंतर देवासुर संग्राम में व्यक्ति को अर्जुन बनकर वासना, तृष्णा एवं अहंता के चक्रव्यूह को भेदने के लिए कटिबद्ध होना है, जहाँ मोह की मोहनी, प्रलोभनों का नागपाश, लोभ का झोंका, संकीर्ण स्वार्थ, क्षुद्र अहं का कुहासा हमेशा के लिए जीवात्मा को ग्रसित करने, दिग्भ्रमित करने के लिए आतुर है।

अग्निपरीक्षा की इन घड़ियों में अर्जुन को प्रचंड साधना पुरुषार्थ एवं गुरुकृपा के संग वीर-

सत्यमेव जयति नानृतम्।

अर्थात् सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं।

—मुंडक. 3/1/6

धीर बनकर इन्हें पार करना है और साथ ही महाकाल की प्रेरणा से संचालित युग-परिवर्तन एवं नवयुग-निर्माण के महाअभियान में सृजन सैनिक की भूमिका को अपना युगधर्म निभाना है।

परिवर्तन के इन महान क्षणों में हर शिष्य को अर्जुन के रूप में नवसृजन-अभियान में अपनी भूमिका निभानी है। अपनी प्रकृति, स्वभाव एवं क्षमता के अनुरूप अपने स्वधर्म को पहचानते हुए इस महाअभियान में प्रवृत्त होना है।

अपनी श्रद्धा को निष्ठा का जामा पहनाते हुए और अपनी जाग्रत प्रज्ञा का अनुसरण करते हुए युग चेतना का संवाहक बनकर मोर्चे के सिपाही की भाँति कार्य करना है। यही समय की पुकार है, महाकाल की हुंकार है, जिसे कोई भी जाग्रत आत्मा अनसुनी नहीं कर सकती।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

मौन तप की शक्ति



भारतीय अध्यात्म की महान परंपरा में तप को आत्मपरिष्कार और आत्मोत्कर्ष का सर्वोच्च साधन माना गया है। युगों से ऋषियों-मुनियों और संतों ने तप के माध्यम से न केवल स्वयं को ऊँचा उठाया, बल्कि संपूर्ण समाज के लिए प्रकाशस्तंभ का कार्य भी किया। तप के अनेक स्वरूप हैं—जप, उपवास, व्रत, स्वाध्याय, सेवा, त्याग और साधना, किंतु इन सबमें एक ऐसा तप भी है, जो बाहर से अत्यंत सरल प्रतीत होता है, परंतु भीतर से अत्यंत गहन और प्रभावशाली होता है। यह है—मौन तप।

भारतीय ऋषियों ने कहा है—‘योगस्य प्रथमं द्वारं वाङ्मनोरोधः’ अर्थात् योग का प्रथम द्वार वाणी का संयम है। वस्तुतः मौन केवल शब्दों का अभाव नहीं, बल्कि चेतना की ऊँची अवस्था का नाम है, जहाँ साधक बाह्य कोलाहल से ऊपर उठकर ईश्वरीय सत्ता के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। आधुनिक युग में इस मौन तप की अद्भुत साधना को अपने जीवन में चरितार्थ करने वाली विभूतियों में वंदनीया माता भगवती देवी शर्मा जी का स्थान अत्यंत विशिष्ट है।

उनका संपूर्ण जीवन तप, त्याग, सेवा और मातृत्व की दिव्य गाथा है, किंतु उनकी साधना का एक अत्यंत सूक्ष्म और कम चर्चित पक्ष उनका मौन तप था। यह मौन केवल व्यक्तिगत, आध्यात्मिक उन्नति के लिए नहीं था, बल्कि युग-परिवर्तन की महान प्रक्रिया से जुड़ा हुआ था। वंदनीया माताजी का व्यक्तित्व बाह्य रूप से अत्यंत सरल, सहज और स्नेहमय था।

वे हजारों-लाखों परिजनों से मिलतीं, उनकी समस्याएँ सुनतीं, उन्हें मार्गदर्शन देतीं, संगठन का संचालन करतीं और साथ ही अपनी नियमित साधना भी करती रहतीं, परंतु इस सक्रियता के पीछे एक गहरा आध्यात्मिक मौन निरंतर प्रवाहित होता रहता था। उनके निकट रहने वाले अनेक परिजनों ने अनुभव किया कि माताजी के भीतर एक अद्भुत स्थिरता और निस्तब्धता थी। वे बहुत कम शब्दों में गहनतम सत्य को व्यक्त कर देती थीं। कई बार तो उनका मौन ही साधकों के लिए संदेश बन जाता था।

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में कहा गया है—‘यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह’ जहाँ वाणी और मन भी नहीं पहुँच सकते, वही परम सत्य का क्षेत्र है। उस सत्य का अनुभव शब्दों से नहीं, बल्कि मौन से होता है। वंदनीया माताजी का जीवन इसी सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण था। वे जानती थीं कि सूक्ष्मजगत् की दिव्यशक्तियों से संपर्क स्थापित करने के लिए अंतर्मन की गहन शांति और निस्तब्धता आवश्यक है।

वंदनीया माताजी के मौन तप का एक अत्यंत मार्मिक और रहस्यमय प्रसंग उनके निकटस्थ परिजनों द्वारा वर्णित किया जाता है। एक बार वे लगातार तीन दिनों तक पूर्णतया मौन रहीं। इन तीन दिनों में उन्होंने आवश्यक संकेतों के अतिरिक्त किसी से कोई वार्त्ता नहीं की और अपना अधिकांश समय गहन अंतर्मुख साधना में व्यतीत किया। उनके निकट रहने वाले परिजन स्वाभाविक रूप से चिंतित हुए

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

और विनम्रतापूर्वक उनसे इस असामान्य मौन का कारण जानना चाहा।

तब वंदनीया माताजी ने अत्यंत गंभीर स्वर में कहा कि वैश्विक परिस्थितियाँ ऐसी बन गई थीं कि पृथ्वी तृतीय विश्वयुद्ध की ओर बढ़ती दिखाई पड़ रही थी। उन्होंने बताया कि उस संभावित विभीषिका को टालने के लिए पूज्य गुरुदेव तथा समस्त ऋषिसत्ता अहर्निश प्रयत्नशील थे। ऐसे समय में सूक्ष्मजगत् में चल रही उस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया में सहयोग देने हेतु उनका मौन तप अनिवार्य हो गया था।

यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि वंदनीया माताजी का मौन केवल व्यक्तिगत साधना का विषय नहीं था, बल्कि वह विश्वमानव के कल्याण और युगधर्म के निर्वहन से जुड़ा हुआ एक उच्चस्तरीय आध्यात्मिक पुरुषार्थ था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि ऋषि-परंपरा में तप और साधना को केवल आत्मकल्याण तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि उसे समस्त सृष्टि के कल्याण का माध्यम समझा गया है।

मौन तप का वास्तविक अर्थ केवल बोलना बंद कर देना नहीं है। यदि वाणी शांत हो जाए, किंतु मन निरंतर इच्छाओं, चिंताओं और कल्पनाओं से भरा रहे तो उसे मौन नहीं कहा जा सकता। वास्तविक मौन वह है, जहाँ विचारों की अनावश्यक भीड़ समाप्त हो जाए, मन निर्मल हो जाए और साधक का समूचा अस्तित्व ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाए। भारतीय संत परंपरा में कहा गया है— 'अंतर्मुखी सदा सुखी' जो व्यक्ति अपने भीतर उतरना सीख लेता है, वही वास्तविक शांति और शक्ति का अनुभव कर सकता है।

वंदनीया माताजी का मौन इसी प्रकार का था। वे संसार के मध्य रहकर भी भीतर से पूर्णतः

ईश्वरमय रहती थीं। उनका मौन निष्क्रियता नहीं, बल्कि उच्चस्तरीय आध्यात्मिक सक्रियता का प्रतीक था। वे मौन के माध्यम से अपने अंतःकरण को इतना परिष्कृत और संवेदनशील बना चुकी थीं कि अनेक बार वे बिना कुछ कहे ही साधकों की मनःस्थिति को समझ लेती थीं।

असंख्य परिजनों ने अनुभव किया कि माताजी के समीप पहुँचते ही उनके भीतर की बेचैनी शांत हो जाती थी। अनेक लोग अपनी समस्याएँ लेकर उनके पास आते, परंतु उनके सम्मुख बैठते ही उन्हें एक अद्भुत शांति का अनुभव होने लगता। यह उनकी वाणी का प्रभाव मात्र नहीं था, बल्कि उनके मौन तप से उत्पन्न दिव्य ऊर्जा का परिणाम था।

एक वरिष्ठ कार्यकर्ता का संस्मरण उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है कि एक बार वे अत्यंत मानसिक तनाव और दुविधा की स्थिति में माताजी के पास पहुँचे। वे अपनी समस्या कहने ही वाले थे कि माताजी ने उन्हें कुछ देर अपने पास मौन बैठने के लिए कहा। लगभग दस मिनट तक दोनों के बीच कोई संवाद नहीं हुआ। इसके बाद माताजी ने केवल इतना कहा—“चिंता मत करो, अपने कर्तव्य पर ध्यान दो, शेष सब ईश्वर पर छोड़ दो।” उस कार्यकर्ता ने बाद में स्वीकार किया कि उस दिन शब्दों से अधिक माताजी के मौन ने उन्हें शक्ति प्रदान की।

भारतीय ऋषि परंपरा सदैव यह मानती रही है कि मौन मनुष्य की चेतना को परिष्कृत करता है। निरंतर बोलते रहने से ऊर्जा बाहर की ओर प्रवाहित होती है, जबकि मौन उस ऊर्जा को भीतर संचित और रूपांतरित करता है। यही संचित ऊर्जा आगे चलकर आत्मबल, करुणा, विवेक और आध्यात्मिक शक्ति के रूप में अभिव्यक्त होती है। वंदनीया माताजी का जीवन इसका सजीव उदाहरण था।

उनके व्यक्तित्व में जो मातृत्व, धैर्य, करुणा और आध्यात्मिक प्रभाव दिखाई देता था, उसके पीछे वर्षों की गहन साधना और मौन तप की शक्ति कार्यरत थी। आज का युग निरंतर बढ़ते शोर, सूचनाओं की अधिकता और मानसिक तनाव का युग है।

मनुष्य के पास सब कुछ है, किंतु स्वयं से मिलने का समय नहीं है। परिणामस्वरूप भीतर रिक्तता, अशांति और असंतोष बढ़ता जा रहा है। ऐसे समय में वंदनीया माताजी का जीवन हमें यह शिक्षा देता है कि प्रतिदिन कुछ समय मौन के लिए अवश्य निकालना चाहिए। यह मौन केवल बोलने से विराम लेने का नहीं, बल्कि आत्मचिंतन, आत्म निरीक्षण और ईश्वर से संवाद का समय होना चाहिए। यही मौन धीरे-धीरे मनुष्य को भीतर से सशक्त बनाता है।

वंदनीया माताजी ने अपने जीवन से यह सिद्ध किया कि महान कार्य केवल बाह्य प्रयासों से नहीं,

बल्कि सूक्ष्म साधना और अंतर्मुख तप से भी संपन्न होते हैं। उनका मौन तप युग-परिवर्तन की उन अदृश्य प्रक्रियाओं का हिस्सा था, जिन्होंने लाखों लोगों के जीवन में आशा, विश्वास और आध्यात्मिक जागरण का संचार किया।

निस्संदेह वंदनीया माताजी का मौन तप केवल एक साधिका की व्यक्तिगत साधना नहीं था, वह एक युगसाधिका का वह महान आध्यात्मिक पुरुषार्थ था, जिसने सूक्ष्मजगत् में परिवर्तन की शक्तियों को जाग्रत किया। उनका जीवन हमें यह संदेश देता है कि शब्दों से अधिक शक्तिशाली मौन होता है, और जो साधक मौन की शक्ति को पहचान लेता है, उसके लिए आत्मविकास और लोक-मंगल के नए द्वार खुल जाते हैं।

यही मौन तप की वास्तविक शक्ति है, जो मनुष्य को सीमित से असीम की ओर, व्यक्त से अव्यक्त की ओर और आत्मा से परमात्मा की ओर अग्रसर करती है। □

परमात्मा उपयुक्त पात्र के साथ ही जुड़ता, सघनता स्थापित करता है और अनुदान वर्षा के माध्यम से अपनी प्रसन्नता-उल्लास व्यक्त करता है। इसके लिए इन्हीं गुणों को अपने जीवन में उतारना होता है, जिनका समुच्चय परमात्मसत्ता में है। इतना करने भर से वह पात्रता पा लेता है, जो उसे ईश्वर के साथ बैठने योग्य अधिकार दे देती है। पात्रता अर्थात् वह गठबंधन, जो आत्मसत्ता को परमात्मसत्ता से जोड़कर आदान-प्रदान का क्रम आरंभ कर देता है। भक्त के गुण-कर्मों की उत्कृष्टता व आदर्शों के प्रति समर्पण तथा भगवान की अनुकंपा यह प्रवाह फिर सतत चलने लगता है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

सफलता मिले, पर नीति पर चलते हुए मिले



सत्संकल्प का नवम सूत्र मानव जीवन को उसके वास्तविक उद्देश्य से जोड़ता है। धरती पर लाखों-करोड़ों जीव हैं, परंतु इस प्राणिजगत् में मनुष्य की विशिष्टता और गरिमा सबसे अलग और श्रेष्ठतम समझी गई है। इसी विशिष्टता और श्रेष्ठता से मनुष्य की मनुष्यता का निर्माण होता है। यदि मनुष्य जीवन श्रेष्ठता के इन मानदंडों से पतित होता है तो फिर वह शरीर-आकृति से मनुष्य दिखते हुए भी प्रकृति और प्रवृत्ति से निम्न पाशविक जीवन की श्रेणी में पहुँच जाता है।

मनुष्य की सार्थकता उसकी मनुष्यता को प्राप्त करने में है। मन, वाणी एवं कर्म की दिशा का लक्ष्य एकमात्र यही है कि वह अपने भीतर की मनुष्यता को प्राप्त करने की दिशा में निरंतर आगे बढ़े और जीवन की सार्थकता को सिद्ध कर ले। पूज्य गुरुदेव का यह सूत्र व्यक्ति, समाज और विश्वमानवता के लिए जीवन की सार्थकता को प्राप्त कराने वाले सिद्धांतों-मानदंडों को लेकर प्रस्तुत हुआ है।

क्रमिक सोपानों में सत्संकल्प के विगत सूत्र मनुष्य के जीवन को सभी आयामों में परिष्कृत, विकसित और क्षमतावान बनाने की प्रक्रियाओं का निर्देशन करते हैं। अब यह सूत्र एक समुन्नत जीवन में आदर्शों-सिद्धांतों और चारित्रिक उसूलों की प्रतिष्ठापना का पथ प्रशस्त करता है। जीवन के अर्थ को खोजने का सर्वाधिक सरल और सर्वजनीन उपाय लेकर प्रस्तुत यह सूत्र प्रत्येक व्यक्ति को सफलता और सार्थकता का सच्चा मार्ग दर्शाता है।

परमपूज्य गुरुदेव की अध्यात्मवादी चिंतन दृष्टि से व्युत्पन्न सत्संकल्प का यह 'नवम' सूत्र है—'अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।'

सामान्य दृष्टि से मनुष्य जीवन की सार्थकता का मूल्यांकन उसकी सफलता या असफलता के आधार पर किया जाता है। सफलता सभी के लिए मूल्यवान है। इसकी इच्छा-आकांक्षा लिए हर कोई अपने जीवन की रीति-नीति बनाकर कार्य करता है। यह सही भी है, परंतु हरेक सफलता की परिणति जीवन को सार्थक बनाए, यह आवश्यक नहीं।

सार्थकता की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि सफलता का मार्ग उत्तम, नीतिपूर्ण और मानवीय गरिमा से युक्त हो। यदि ऐसा नहीं है, इसके विपरीत येन-केन-प्रकारेण कैसे भी उलटे-सीधे तरीके से सफलता प्राप्त कर ली गई है तो यह जीवन में सार्थकता के स्थान पर पतन और पीड़ा का ही परिणाम उत्पन्न करती है।

मानव मात्र को इस विडंबना से बचाने के लिए ही पूज्य गुरुदेव का यह संकल्प-सूत्र है। इसमें सफलता का मूल्यांकन एवं निर्धारण नीतिपूर्ण मार्ग पर निर्भर है। अनीति के मार्ग से प्राप्त सफलता को अस्वीकार करते हुए नीतिसम्मत आचरण से प्राप्त असफलता को श्रेष्ठ बताया गया है। सफलता का मूल्य उसे प्राप्त करने में लगाए गए उपायों, साधनों और कर्मों की गरिमा में सन्निहित है; जबकि

लोग प्रायः जल्दी सफलता पा लेने की होड़ में नीति-मर्यादा एवं मानवीय गरिमा की अनदेखी कर बैठते हैं।

यह सच है कि दुनिया में सफल होने या सफल दिखने वालों को अन्यो की तुलना में ज्यादा महत्त्व और सम्मान मिलता दिखाई देता है। दूसरी धारणा यह भी है कि सफलता से जीवन में सुख-शांति, समृद्धि और खुशहाली आती है। यही कारण है कि लोग सफलता की ओर आकर्षित होते हैं और त्वरित परिणाम की लालसा में सही-गलत का ध्यान किए बगैर अनीति की राह लेते हैं।

सफलता के लिए शॉर्टकट तलाशने और अनीति का मार्ग अपनाने की प्रवृत्ति आधुनिक समाज में एक बीमारी की तरह फैल गई है। झूठ, बेईमानी, दगाबाजी, चोरी, लूट, चालाकी, चापलूसी, धोखा, छल-कपट, शोषण, विश्वासघात जैसे न जाने कितने अनीतिपूर्ण तरीकों को अपनाकर व्यक्ति सफलता की गिनती में जल्दी आना चाहता है।

आधुनिक जीवनशैली के भोगवादी मानदंड और नाम, पद, प्रतिष्ठा एवं फेमस होने की ललक में व्यक्ति कुछ भी करने को तत्पर दिखाई देता है। दुर्भाग्य यह है कि ऐसे अनीतिपूर्ण तरीके से आगे बढ़ने और बाह्य-सांसारिक रूप से सफल दिखने वाले लोगों को समाज एवं अपनों के बीच से भी प्रोत्साहन मिल जाता है।

इंटरनेट की वर्चुअल दुनिया में तो शीघ्र प्रसिद्धि पाने, वायरल होने की होड़ में अनीतिपूर्ण तरीकों को अपनाना सामान्य बात है। ऐसी शॉर्टकट से प्राप्त सफलता पानी के बुलबुले की भाँति भले ही थोड़े समय में मिट जाए, परंतु फिर भी लोग ऐसे अनीतिपूर्ण तरीकों को अपनाने में कोई परहेज नहीं

करते हैं। शीघ्र सफलता की चाह और इसके लिए अनैतिक या गलत मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति ने महामारी की तरह समूचे मानवीय समाज को अपनी गिरफ्त में कर रखा है।

सफलता की चाहत एवं प्रयास करना कोई गलत बात नहीं, अपितु सहज-स्वाभाविक है, परंतु इसके लिए गलत रास्ते का चयन, अनीति का

पाठक ध्यान दें

नए डाक नियमों के अनुसार अब बिना पिनकोड व मोबाइल नंबर के कोई डाक नहीं जा सकेगी।

कृपया सभी पाठक अपनी सदस्य संख्या, संपूर्ण नाम पते सहित, पिनकोड, मोबाइल, ई-मेल, व्हाट्सएप नंबर अखण्ड ज्योति संस्थान के पते पर डाक से, ई-मेल akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org पर अथवा व्हाट्सएप नं. 9927086290 पर तुरंत भेजने का अनुग्रह करें।

आगे से अपने सभी पत्र व्यवहार में पिनकोड, मोबाइल नंबर व व्हाट्सएप नंबर का उल्लेख अवश्य करें।

पोषण-प्रोत्साहन करना सर्वथा मनुष्य और समाज के लिए आत्मघाती है।

अनीति से प्राप्त सफलता का परिणाम सदैव अशांति, असंतुष्टि और निरर्थकता के रूप में ही सामने आता है। ऐसे में समाज को ऐसी गलत मनोवृत्ति एवं भटकाव से बचाना एवं जाग्रत करना

आवश्यक है। सत्संकल्प का यह सूत्र समाज में फैली इसी दूषित मनोवृत्ति का समाधान प्रस्तुत करता है।

साथ ही यह सूत्र प्रत्येक व्यक्ति को धर्म, नीति, नैतिकता और आचरण को सर्वोपरि रखते हुए सफलता की ओर बढ़ने तथा सेवा, परमार्थ, सहायता और संवेदना की मानवीय प्रवृत्तियों को सफलता का लक्ष्य बनाने की प्रेरणा देता है। हर व्यक्ति सफलता प्राप्त करे, परंतु उसका मार्ग परिश्रम, संघर्ष, धैर्य, संयम, साहस और त्याग जैसे मानवीय पुरुषार्थ के मूल्यों को आधार बनाकर तय करे, अनीति के मार्ग से नहीं।

जिस प्रकार भोजन का उद्देश्य पेट की भूख मिटाना और साथ ही तृप्ति के एहसास को प्राप्त करना होता है, उसी प्रकार सफलता का उद्देश्य भी जीवन को सार्थकता प्रदान कर संतुष्टि एवं शांति की अनुभूति करना होता है। सफल जीवन में सार्थकता को उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है मानवीय गरिमा के अनुरूप जीवन-पथ का चयन। मूल्यों को जीने से सार्थकता आती है व श्रम, संयम, पुरुषार्थ लगाने से प्राप्त हुई सफलता संतुष्टि का अनुभव कराती है।

ये दोनों मिलकर जीवन में सुख-शांति और आनंद का स्वाद उत्पन्न करते हैं। व्यक्ति सोचता है कि कैसे भी यदि वह सफल हो जाए तो सुख-शांति मिल जाएगी, परंतु वास्तविकता में उलट होता है कि सफलता मिल जाने के बाद भी जीवन में गहरी निराशा, आत्मग्लानि, भय, कुंठा जैसे मनोभाव जीवन को पीड़ा पहुँचाते रहते हैं।

बाहरी दुनिया की नजरों में भले ही सफलता दिखाई दे, परंतु भीतर के एहसास निरंतर जीवन

की निरर्थकता का भाव कराते रहते हैं। दिखावटी सफलता की चमक के नीचे विद्रूप व्यक्तित्व और अस्तित्व के घाव रिसते रहते हैं और उनकी पीड़ा जीते-जी नारकीय यातना से कम नहीं कही जा सकती है।

पूज्य गुरुदेव मानव मात्र को इसी दुर्भाग्य के प्रति सावधान, सजग करते हुए कहते हैं कि सफलता का मूल्य नहीं, मूल्य है तो नीति, धर्म और आचरण का। अतः बाहरी जीवन के मानदंडों में सफलता मिले या असफलता हाथ लगे—दोनों ही स्थितियों में मानवीय गरिमा, नैतिकता और धर्म का मार्ग नहीं छोड़ा जाना चाहिए।

नीति को साथ लेकर चलने से जीवन में बाह्य उपलब्धियाँ थोड़ी कम भी मिलें, असफलता भी हाथ लगे तो घाटे का सौदा नहीं है, क्योंकि नीति के मार्ग पर चलने वालों को जीवन के अमूल्य वरदान के रूप में आत्मसंतुष्टि, प्रसन्नता और आत्मगौरव की सहज प्राप्ति हो जाती है। इनकी प्राप्ति ही मनुष्य जीवन की सच्ची सार्थकता और सफलता है।

संसार में ऐसे सैकड़ों उदाहरण और आदर्श मौजूद हैं, जिन्होंने नीति एवं मानवीय गरिमा के मार्ग पर चलते हुए गर्व एवं आत्मसम्मान के लिए असफलताओं को शिरोधार्य किया है। नीति के मार्ग पर चलकर असफल होकर भी उनका जीवन प्रेरक और आदर्श के रूप में सम्मानित होता है।

भारतीय संस्कृति के इतिहास में अवतारी चेतनाओं से लेकर ऐतिहासिक महापुरुषों तक सभी के जीवन चरित्र की घटनाओं में नीति के मार्ग की जीवंत प्रेरणाएँ मौजूद हैं। शिवाजी, महाराणा प्रताप, बंदा वैरागी, गुरु गोविंद सिंह, लक्ष्मीबाई, सुभाष चंद्र बोस, भगतसिंह जैसे आदर्श

पर मर-मिटने वाले जीवन चरित्र इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

नीति, आचरण की मर्यादा और मनुष्यता को सर्वोपरि मानकर जीवन जीने वाले सदैव सम्माननीय एवं श्रेष्ठ ही कहे जाते हैं। उनकी असफलताओं में भी धर्म, नीति और मनुष्यता की सर्वथा विजय ही होती है। इसके साथ ही एक सत्य यह भी जुड़ा है कि नीति और आदर्शों को जीने वालों के लिए सफलता और असफलता का कोई विशेष औचित्य भी नहीं रहता है। उनका ध्येय केवल नीति और आदर्शों की रक्षा करना और हर परिस्थिति में इस मार्ग पर डटे रहना होता है।

वर्तमान समय में ऐसे नीति के मार्ग पर चलने वाले कम ही हैं। बाहर का परिदृश्य कुछ ऐसा दिखाई देता है—सभी शीघ्र सफलता की अंधी दौड़ में आसानी से भेड़-चाल के शिकार हो रहे हैं। अपने आस-पास, समाज में लोगों को थोड़े समय में सफल बनते देख स्वयं की सफलता का मूल्यांकन भी उन्हीं मानदंडों से करने लगे हैं।

पूज्य गुरुदेव का यह सूत्र लोगों एवं समाज में फैली इसी विकृत मनोदशा को सुधारने तथा उचित दिशा में मोड़ने का पथ-प्रदर्शन है। अन्य सभी उपायों-साधनों की तुलना में नीति का मार्ग ही सर्वोत्तम और मानवीय गरिमा के लिए उपयुक्त है, परंतु नीति के मार्ग पर चलना और नीतिसम्मत आदर्शों-मर्यादाओं का संरक्षण-समर्थन करना इतना सरल नहीं होता, जितना कि अनीति के मार्ग पर चलना होता है।

नीति के लिए त्याग, शौर्य, साहस और आचरण की कसौटी पर खरे उतरना आवश्यक होता है। स्वयं के जीवन को आदर्श के रूप में ढालने-गढ़ने

पर ही इस मार्ग की यात्रा सफल और सार्थक होती है।

केवल बातों, वचनों से धर्म, मर्यादा, कर्तव्यों की बातें करना और आचरण से कुछ और प्रदर्शित करने से बात नहीं बनती। इसके लिए आवश्यक है कि स्वयं के आचरण एवं व्यवहार को आदर्शों के अनुरूप बनाया जाए। धैर्य, संयम और विवेक की कसौटी पर कर्तव्यों का संपादन और समर्थन हो तथा मनुष्यता की गरिमा अक्षुण्ण बनी रहे, तभी नीति का मार्ग प्रकाशित होता है।

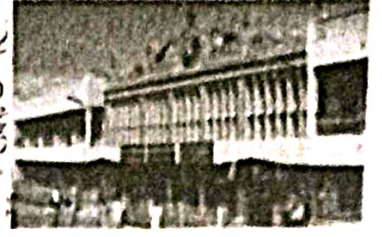
सत्संकल्प के इस सोपान में यह प्रेरणा भी सन्निहित है कि स्वयं तो नीति पर चलें ही, साथ ही दूसरों को भी प्रेरित-प्रोत्साहित करें। अनीति, अन्याययुक्त कार्यों, प्रवृत्तियों को न स्वयं स्वीकार करें और न ही किसी भी रूप में बढ़ावा दें।

अनीति का सदैव प्रतिरोध-प्रतिकार किया जाए। कुल-कुटुंब, नौकरी, व्यवसाय, सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र—हर जगह जहाँ भी नैतिक अराजकता और भ्रष्ट आचरण दिखाई दे तो उसका विरोध, असहयोग करना आवश्यक है। ऐसा नहीं कर पाने की दशा में ही अनीतिपूर्ण प्रवृत्तियों को फलने-फूलने का अवसर मिल जाता है।

सत्य, न्याय, नीति और आदर्शों की रक्षा के लिए प्रतिबद्धता उत्पन्न करके ही ऐसे अनीतिपूर्ण कार्य करने की मनोवृत्ति से व्यक्ति एवं समाज को मुक्त किया जा सकता है। व्यक्ति कितना भी धन-संपदा, सुख-साधन, पद-प्रतिष्ठा प्राप्त कर ले, किंतु उसके जीवन की वास्तविक सफलता सही मार्ग पर चलकर मनुष्य होने की गरिमा को चरितार्थ करने में ही है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

आदर्श ग्राम योजना पर शोध



भारतवर्ष में धर्म, समाज और संस्कृति का मौलिक स्वरूप गाँवों में ही निवास करता है। गौरवशाली परंपराएँ, रीति-रिवाज, विविधतापूर्ण जीवनपद्धति और आचरण-व्यवहार के अनूठे आदर्शों का स्वरूप भारत के ग्रामीण जीवन में ही विद्यमान है।

किसी ने सच ही कहा है कि भारत की वास्तविक आत्मा गाँवों में बसती है। धर्म, अध्यात्म और सांस्कृतिक मूल्यों से उत्पन्न विशिष्टताओं को सँभाले भारत की ग्रामीण संस्कृति समाज एवं पूरे विश्व में एक अलग पहचान रखती है। यही कारण है कि इक्कीसवीं सदी में भारत का ग्रामीण जीवन भी पर्यटन का एक प्रमुख क्षेत्र बनकर उभरा है।

यहाँ ग्रामीण पर्यटन मुख्य रूप से भारतीय समाज में रचे-बसे सांस्कृतिक मूल्यों की विरासत पर आधारित है। भारत के गाँव कला, शिल्प, धर्म, संस्कृति और इतिहास की समृद्ध परंपराओं से परिपूर्ण हैं, इसलिए पर्यटन जगत् के लिए यह व्यापक संभावनाओं से भरा क्षेत्र है, परंतु यह भी एक सच है कि ग्रामीण परिवेश में रहने वाले समाज के लिए चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। एक ओर अपनी इन समृद्ध गौरवशाली परंपराओं को बचाए रखना तथा दूसरी ओर आधुनिकता के जीवन स्तर और वातावरण से सामंजस्य स्थापित करना।

ऐसी चुनौतियों के समाधान और ग्रामीण जीवन एवं समाज में एक आदर्श सुव्यवस्था तथा निरंतर विकास की गतिशीलता बनाए रखने के लिए ग्राम विकास, आदर्श ग्राम योजना जैसे प्रयास आवश्यक हैं। ऐसे प्रयासों में सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों के अनेक क्रियाकलाप व गतिविधियाँ सम्मिलित

हैं, परंतु इन सबमें 'आदर्श ग्राम योजना' का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

आदर्श ग्राम योजना द्वारा ग्रामीण जीवन की सुव्यवस्था, स्तरीय विकास एवं सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण की एक व्यापक पहल शांतिकुंज, हरिद्वार द्वारा की गई है। इसके परिणाम एवं प्रभाव अत्यंत प्रेरक एवं महत्त्वपूर्ण दिखाई देते हैं।

इस संदर्भ में जून-2020 में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पर्यटन प्रबंधन विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है। यह शोध अध्ययन शोधार्थी अजय भारद्वाज द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पंड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ. उमाकांत इंदोलिया के निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

इस शोध का विषय है—'रोल ऑफ आदर्श ग्राम योजना इन परफार्मिंग सस्टेनेबल डेवलपमेंट ऑफ रूरल टूरिज्म इन इंडिया-कॉन्सेप्ट एंड एप्लीकेशन्स।' शोध की सर्वेक्षणात्मक एवं विवेचनात्मक विधि से संपन्न किए गए इस अध्ययन को शोधार्थी द्वारा कुल छह अध्यायों में वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है। जानकारी, प्रेरणा एवं उपयोगिता की दृष्टि से इस अध्ययन का सार-संक्षेप यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

अध्ययन का प्रथम अध्याय 'विषय परिचय' है। इसके अंतर्गत शोध-विषय से संबंधित अवधारणाओं सिद्धांतों को प्रस्तुत करते हुए आदर्श ग्राम योजना के स्वरूप की विवेचना की गई है तथा शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है। ग्रामीण पर्यटन का संबंध मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के जन-जीवन एवं गतिविधियों से है, जिसके अंतर्गत

कृषि, संस्कृति, प्रकृति, पर्यावरण, स्वास्थ्य और साहसिक पर्यटन जैसे कई आयाम सम्मिलित हो जाते हैं। गाँवों में प्रचलित लोककलाएँ, रंगमंच, शिल्प, पारंपरिक वेश-विन्यास, भोजन आदि अनेक विशिष्टताओं को देखने-जानने के लिए पर्यटक इस ओर आकर्षित होते हैं।

ग्रामीण पर्यटन का विकास व्यापक रूप से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन को प्रभावित करने की क्षमता से युक्त है। यही कारण है कि विशेषज्ञ लोगों द्वारा ग्रामीण पर्यटन को ग्रामीण समाज एवं जीवन के लिए सतत विकास के एक सुदृढ़ क्षेत्र के रूप में देखा जा रहा है। एक भारतीय गाँव का आदर्श स्वरूप क्या हो, इस दृष्टि से ग्रामोत्थान एवं ग्राम्य विकास से संबंधित कई अवधारणाएँ प्रस्तुत हुई हैं।

गांधी जी ने आदर्श गाँव की परिकल्पना के आधार पर स्वराज को सु-राज में बदलने का विचार दिया। संत विनोबा जी ने भी स्वराज से आगे ग्राम राज के लिए संघर्ष की बात कही। उनके विचारों में भारत का प्रत्येक ग्राम आत्मनिर्भर और स्वावलंबी बनकर स्वराज में अपना योगदान दे, यह आवश्यक है।

ग्राम ही सर्वोदय का आधार है। विकास एवं उत्थान हेतु गाँवों को गोद लेना या ग्रामदान उनका एक विशिष्ट आंदोलन रहा। पूज्य गुरुदेव ने ग्राम विकास, ग्राम संवर्द्धन के उद्देश्य से ग्रामोत्थान और ग्रामतीर्थ के अंतर्गत अनेक विशिष्ट गतिविधियाँ संचालित की हैं, जिनके स्वरूप एवं महत्त्व की विवेचना इस अध्ययन में विस्तृत रूप से की गई है। विगत वर्षों में ग्राम्य विकास की अवधारणाओं को आधार बनाकर भारत सरकार ने भी सांसद आदर्श ग्राम योजना का सूत्रपात किया है।

इस शोध का द्वितीय अध्याय 'साहित्य सर्वेक्षण' का है। इसमें ग्राम्य पर्यटन, आदर्श ग्राम योजना एवं सतत पर्यटन से संबंधित शोध साहित्यों का सर्वेक्षण एवं विवरण प्रस्तुत करते हुए शोधार्थी

ने शोध-विषय के चयन में आधार बने शोध अंतराल का विवेचन किया है।

शोधार्थी का मत है कि भारत में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के सतत विकास को लेकर अनेक अध्ययन हुए हैं, परंतु फिर भी ग्रामीण पर्यटन के सतत विकास को बढ़ावा देने वाले विशिष्ट अध्ययन की आवश्यकता है। यह अध्ययन इसी दिशा में किया गया महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

तृतीय अध्याय 'शोध-प्रविधि' है। इसके अंतर्गत शोध-प्रक्रिया, शोध समस्या का कथन, नमूना चयन प्रक्रिया, शोध प्रारूप, प्रयोगात्मक प्रक्रिया, शोध उपकरण व आँकड़े एकत्रीकरण की प्रक्रिया का विवेचन किया गया है। शोध की प्रयोगात्मक प्रक्रिया में अखिल विश्व गायत्री परिवार (AWGP) द्वारा आदर्श ग्राम तीर्थ योजना (AGY) के अंतर्गत चयनित गाँवों में से कुल सात गाँवों को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

इनमें एक गाँव—भोगपुर उत्तराखंड राज्य से; तीन गाँव—आँवलखेड़ा, मौसमाबाद व गरही फौजी उत्तर प्रदेश राज्य से, धिंगरा राजस्थान से तथा अजंदी व भुलाय, मध्य प्रदेश राज्य से चयनित किए गए हैं। उक्त गाँवों के चयन हेतु शांतिकुंज द्वारा संचालित सप्त आंदोलन कार्यक्रमों को मानदंड के रूप में अपनाया गया है। चयन के सात मानदंड हैं—

- (i) साधना,
- (ii) शिक्षा,
- (iii) स्वास्थ्य,
- (iv) स्वावलंबन,
- (v) नारी जागरण,
- (vi) उपभोग एवं कुरीति उन्मूलन एवं
- (vii) पर्यावरण संरक्षण।

इन सभी मानदंडों को पूरा करने वाले गाँवों को आदर्श गाँव की श्रेणी में रखा गया है।

चयनित गाँवों से तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार, प्रश्नावली एवं दूरसंचार

माध्यम को प्रयुक्त किया गया। इसके साथ ही शोधार्थी ने इंटरनेट, बाह्य स्रोतों, पुस्तकों-पत्रिकाओं, अप्रकाशित शोधग्रंथों से भी जानकारी प्राप्त करने की सहायता प्राप्त की है। प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त शोध आँकड़ों का वर्गीकरण कर सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है।

शोध के चतुर्थ अध्याय में शोध सर्वेक्षण से प्राप्त महत्वपूर्ण तथ्यों तथा ग्राम-सर्वे रिपोर्ट को प्रस्तुत किया गया है। इस सर्वेक्षण में भारतीय नागरिकों की अच्छी स्थिति को दर्साने वाले चार राज्यों के सात गाँवों की वर्तमान स्थिति का आलोचनात्मक एवं निष्पक्ष अवलोकन किया गया है।

सातों गाँवों की भौगोलिक विशिष्टता, क्षेत्रफल, जनसंख्या, सामाजिक विविधता, भाषा आदि की जानकारी के साथ ही शोध मानदंडों की दृष्टि से उनकी वर्तमान स्थितियों एवं चुनौतियों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

शोध के पंचम अध्याय में शोध के विश्लेषणात्मक परिणामों एवं महत्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन है।

इसके अंतर्गत शोध परिकल्पनाओं को आधार बनाकर सांख्यिकीय विश्लेषण प्राप्त आँकड़ों की विवेचना करते हुए शोध परिणामों की व्याख्या की गई है।

विभिन्न राज्यों के चयनित सात गाँवों से सम्मिलित किए गए लोगों की संख्या, लिंग अनुपात, आयु एवं शोध प्रयोग के अपेक्षित मानदंडों पर उनसे प्राप्त तथ्यों को सारणी, चार्ट एवं सूची बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

अंतिम अध्याय शोध के सारांश और सुझाव के रूप में है। इसके अंतर्गत शोध अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए शोधार्थी द्वारा शोध परिणामों को आधार बनाकर एक आदर्श ग्राम विकास का मॉडल प्रस्तुत किया गया है।

यह सर्वविदित है कि भारत के गाँवों ने लंबे समय से उन्नति और सुविधाओं के लिए संघर्ष किया है। इसी तथ्य को आधार मानकर इस शोध की अवधारणा का उद्देश्य ग्राम्य विकास की दिशा में सार्थक प्रयासों को उजागर करते हुए इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करना है।

ग्राम विकास योजना के अंतर्गत शोधार्थी ने जिन महत्वपूर्ण बिंदुओं को अपने मॉडल में सम्मिलित किया है वे हैं-

- (i) ग्राम चयन और उसका आधार,
- (ii) ग्राम के योग्य, समर्पित और सेवाभावी कार्यकर्ताओं की पहचान कर ग्राम विकास बोर्ड का गठन,
- (iii) वर्तमान की स्थिति का सर्वेक्षण,
- (iv) ग्राम विकास योजना तैयार करना,
- (v) योजना का क्रियान्वयन करना।

इस क्रियान्वयन में समय सीमा का निर्धारण, प्रशिक्षण, जनभागीदारी, कार्य समीक्षा आदि सम्मिलित हैं।

शोध निष्कर्ष के रूप में शोधार्थी का मत है कि सतत ग्रामीण पर्यटन का मॉडल अभी विकास की ओर है। वैसे किसी भी गाँव को आदर्श और सतत विकास के रूप में लाने में लंबा समय लगना स्वाभाविक है, परंतु यह विकास आवश्यक है और धैर्य से किया जाना चाहिए।

शांतिकुंज द्वारा संचालित ग्रामतीर्थ योजना, ग्रामोत्थान की गतिविधियाँ और इसके मानदंडों को ग्राम विकास के लिए एक आदर्श प्रक्रिया के रूप में अपनाया जा सकता है। भारत जैसे ग्राम प्रधान विशाल देश में ग्रामीण पर्यटन के सतत विकास को बढ़ावा देने में ऐसी आदर्श ग्राम योजना एवं ग्राम तीर्थ योजना की निश्चित रूप से महत्वपूर्ण भूमिका है।



एकनिष्ठ भाव वाली होती है सात्त्विक धृति



(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की तैंतीसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के बत्तीसवें श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि जो बुद्धि अहंकार से आच्छादित रहती है, अधर्म में धर्म, असत्य में सत्य की कल्पना करती है, वह तामसिक प्रवृत्ति की होती है। तामसिक प्रवृत्ति की बुद्धि उत्कृष्ट ज्ञान से रहित होती है, इसलिए यह अधर्म को धर्म बताने का अनर्थ करती है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि राजसी बुद्धि वाला व्यक्ति धर्म और अधर्म के मध्य भ्रमित रहता है तो वहीं तामसी बुद्धि अधर्म को ही धर्म मानने के दुराग्रह पर आ जाती है। वे सारे कर्म जो शास्त्रविरुद्ध हैं एवं घोषित रूप से अधर्म में आते हैं—तामसी बुद्धि वाला व्यक्ति ऐसे अधार्मिक कृत्यों को भी धर्म मानने का कार्य करता है।

श्रीभगवान् अर्जुन को समझाते हैं कि जो बुद्धि तमस् से आच्छादित है, वह प्रत्येक चीज को विपरीत अर्थ से देखती है। बुद्धि के दो कार्य होते हैं—जानना एवं निर्णय लेना। जब बुद्धि विपरीत दृष्टि से कार्य करती है तो किसी तथ्य के सत्य को जानने का उसका अभिप्राय भी गलत होता है, पद्धति भी गलत होती है एवं जो जाना गया है, उसके आधार पर किया जाने वाला निर्णय भी गलत ही होता है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐसी बुद्धि फिर अधर्म को ही धर्म मानने लगती है और ऐसी बुद्धिवाला कर्त्ता तदनु रूप आचरण करने लग जाता है। सार रूप में कहें तो जिस बुद्धि में अविवेक है, तमस् है, वह फिर कभी भी यथार्थ निर्णय ले पाने की स्थिति में नहीं होती; क्योंकि वह भ्रांति को ही सत्य मानकर चलती है।]

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अगला सूत्र अर्जुन को कहते हैं कि—

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी

॥ 33 ॥

शब्दविग्रह—धृत्या, यया, धारयते, मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः, योगेन, अव्यभिचारिण्या, धृतिः, सा, पार्थ, सात्त्विकी।

शब्दार्थ—हे पार्थ! (पार्थ), जिस (यया), अव्यभिचारिणी (अव्यभिचारिण्या), धारण शक्ति से (मनुष्य) (धृत्या), ध्यान योग के द्वारा

(योगेन), मन, प्राण और इंद्रियों की क्रियाओं को (मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः), धारण करता है (धारयते), वह (सा), धृति (धृतिः), सात्त्विकी है (सात्त्विकी)।

अर्थात् जो धृति योग से विकसित होती है और जो मन, प्राण और इंद्रियों को स्थिर रखती है, उसे सात्त्विक धृति या संकल्प कहते हैं।

बुद्धि के त्रिगुणात्मक भेदों की व्याख्या करने के उपरान्त अब भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन को धृति के तीनों तरह के भेदों को समझा रहे हैं। वे अर्जुन को समझाते हैं कि सात्त्विक धृति या संकल्प हमारे

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

अंतर्मन की वह शक्ति है, जिससे हम प्रतिकूल परिस्थितियों एवं बाधाओं के मध्य भी अपने पथ पर अडिग, अविचलित रहते हैं।

वे अर्जुन से इस श्लोक में कहते हैं कि सात्त्विक धृति कौन-सी है? सात्त्विक धृति वह है, जो परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ है— 'अव्यभिचारिण्या' धृति का अर्थ मनोनिग्रह की क्षमता से, धैर्य से, धारण करने की शक्ति से है। भगवान श्रीकृष्ण सात्त्विकी धृति पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि ऐसी धृति को परमात्मा को छोड़ और किसी के प्रति संबंध नहीं रखने की आवश्यकता है।

सात्त्विकी धृति का पहला लक्षण ये ही है कि वह परमात्मा के प्रति एकनिष्ठ और स्थिर होती है। जब मीरा ने तुलसीदास जी को पत्र लिखकर अपनी मनोव्यथा कही कि उसके परिवारीजन उसे ईश्वरभक्ति से विमुख करने का प्रयत्न करते हैं तो तुलसीदास जी ने प्रश्नोत्तर में ईश्वर के प्रति एकनिष्ठा वाली धृति के होने की तरफ ही इशारा किया और उसे बाद में विनय पत्रिका में भी लिखा—

जाके प्रिय न राम बैदेही।

तजिए ताहि कोटि बैरी सम,

जद्यपि परम सनेही ॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बंधु,
भरत महतारी।

बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि,
भाए मुद मंगलकारी ॥

इसी भाँति श्रीभगवान भी सात्त्विकी धृति पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि वो ईश्वरनिष्ठ हो, अव्यभिचारी हो तथा समता या योग से युक्त हो। आदि शंकराचार्य ने धृति को दैवी संपदा बताते हुए कहा है कि जब देह, इंद्रियाँ थक जाती हैं तो उनमें उत्साह पैदा करने वाली वृत्ति को धृति कहते हैं। इसीलिए इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस धृति से मन, प्राण और समस्त इंद्रियों की क्रियाएँ धारण की जाती हैं (मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः धारयते)—वह सात्त्विक या सात्त्विकी धृति है।

साररूप में कहें तो सात्त्विकी धृति उस संकल्प का नाम है, जो हमारे मन, प्राण, इंद्रियों को धारण करता है अर्थात् उनको आचरण में उतारने के लिए प्रेरित करता है। साथ ही ये सात्त्विक धृति फल की आशा का त्याग कर, योग से युक्त होकर मात्र परमात्मा के प्रति स्थिर होती है और मोक्ष-प्राप्ति में सहायक होती है।

(क्रमशः)

एक सेठ जी के घर में आग लग गई। उनका सारा ध्यान अपनी धन-दौलत को समेटने में लगा रहा। इस भाग-दौड़ में सामान तो निकल गया, परंतु सेठ जी का बच्चा, आग में ही फँसा रह गया। अब सेठ जी छाती पीट-पीटकर रोने और अपने लोभ-लालच पर शरमिंदगी व्यक्त करने लगे। इसी तरह मनुष्य शरीर के सुखों की पूर्ति करने के फेर में आत्मा को पूरी तरह से भुला बैठता है।

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

प्रेरणादायी गुरुसत्ता का जीवन (पूर्वावर्द्ध)



परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह विशिष्टता है कि आध्यात्मिक चिंतन के अत्यंत गूढ़ विषय उनके मुखारविंद से इस सहजता के साथ निस्सृत हुए हैं कि उनका आनंद वह स्नातक भी उठा सकता है, जो किसी उच्च शिक्षा संस्थान में कार्यरत हो तो वहीं उन उद्बोधनों से वह व्यक्ति भी अपने जीवन की दिशा को प्राप्त कर सकता है, जिसने कभी साक्षरता प्राप्त न की हो। अपने एक ऐसे ही अप्रतिम उद्बोधन में परमवंदनीया माताजी, उनके—स्वयं के एवं पूज्य गुरुदेव के जीवन से सभी परिजनों को शिक्षा ग्रहण करने को कहती हैं। वे स्मरण दिलाती हैं कि किन संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में पूज्य गुरुदेव ने अनवरत तपस्या कर इस मिशन की नींव को सशक्त बनाया। साथ ही वे यह भी याद दिलाती हैं कि किस तरह से उनके स्वयं के संवेदनापूर्ण संरक्षण ने इतने वृहद् और विशाल गायत्री परिवार को बनाकर खड़ा किया। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

हमारे जीवन से कुछ सीखें!

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

“ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।”

बेटियो, आत्मीय प्रज्ञा परिजनो! परिजन पूछते हैं और वे हमारे व्यक्तिगत जीवन से कुछ समझना चाहते हैं। पिछले दिनों हम बहुत सारे उदाहरण दे चुके हैं, लेकिन वो उदाहरण उनके हैं, जो व्यक्ति सामने नहीं हैं, संसार से जा चुके हैं; उनके बारे में वे समझना चाहते हैं। लेकिन जो सामने हैं, उनसे तो पहले सीख लीजिए।

आइए! आज हम अपने व्यक्तिगत जीवन से आपको सिखाना चाहेंगे कि गृहस्थ जीवन कैसा होना चाहिए? दांपत्य जीवन कैसा होना चाहिए? पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन और हमारा आध्यात्मिक जीवन कैसा होना चाहिए?

व्यक्ति को व्यक्ति के लिए क्या करना चाहिए? क्या फर्ज और कर्तव्य कुटुंब के हैं? और क्या फर्ज और कर्तव्य हमारे समाज के लिए हैं, राष्ट्र के लिए हैं? यह आज थोड़ी-सी झाँकी मैं आपको कराना चाहूँगी।

बच्चे पूछते हैं और कहते हैं कि आपने उदाहरण तो दिया, बताया तो सही, पर वो प्रत्यक्ष नहीं है। वास्तव में जो प्रत्यक्ष में नहीं है, उसके बारे में सही मूल्यांकन करना संभव नहीं है, असंभव है। जो चीज संभव है, चलिए उसी को क्यों न कहें। तो आज मैं आपके सामने अपने और पूज्य आचार्य जी के संबंध में कुछ सुनाना चाहूँगी और वो घटना जो आपको मैं सुना सकती हूँ और जो नहीं सुना सकती हूँ, जो हमारी अंतरंग की विशेषता है, उनको नहीं कहूँगी, पर जिनसे आपको लाभ मिलना चाहिए वो मैं आपको सुना रही हूँ।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

जीवन धन्य बनाएँ

मेरे जीवन में सामान्य गृहस्थ के रूप में जब आचार्य जी का आना हुआ तो मैंने जो पाया, वह आपको बता रही हूँ। मैंने उन्हें निकट से देखा, समझा और पढ़ा और अंतरंग में झाँक करके मैंने दर्शन किया उस भगवान का, जिसे पाने के लिए जीवात्मा तड़प रही थी और आने से पूर्व विचार कर रही थी कि कहीं ऐसी दुर्गति न हो, जैसी आम महिलाओं की होती है।

कोई उद्देश्य नहीं होता, कोई लक्ष्य नहीं होता गृहस्थ जीवन का और दांपत्य जीवन का, बिलकुल निरुद्देश्य जीवन जिया जाता है। उनने कहा कि ऐसे जीवन को धिक्कार है। जो जीवन जिया जाए तो ऐसा जिया जाना चाहिए, जिससे जीवन धन्य बन जाए।

जिस दिन मैं आई तो मैंने उस भगवान को पा करके अपने को धन्य समझा और अपने को समर्पण करके मैंने सब कुछ पा लिया। वो उदारता पाई, जो बिरले को मिलेगी, वो सहानुभूति पाई, वो प्रेम पाया। उस प्रेम की गंगा में नहा करके मैं धन्य हो गई। आज जिस स्थिति में आप देख रहे हैं, कोई माँ कहते हैं, कोई शारदामणि कहते हैं, कोई क्या कहता है, कोई क्या कहता है मालूम नहीं। जैसी जिसकी श्रद्धा है, उससे मुझे तौलते हैं। यह किनकी देन है?

यह देन है मेरे भगवान की। सहयोग मेरा भी है और देन उन्हीं की है। उनके जीवन से मैंने पाया कि वे साक्षात् भगवान हैं। भगवान के रूप में हम पत्थर को तो पूजते हैं, पर पत्थर की विशेषता के बारे में हमें कतई मालूम नहीं है, लेकिन एक इनसान के रूप में हमने भगवान को पाया है। इससे हम सीख रहे हैं। इससे हम ले रहे हैं। अनवरत लिया, सारी जिंदगी लिया। अब देने की बारी आई है।

कहाँ तक हम उनके अनुदानों को चुका पाएँगे, हमें नहीं मालूम, पर इतना जरूर है कि हम शक्ति भर, जितनी शक्ति है, सही रूप में अर्धांगिनी हो करके रहेंगे।

उन्होंने मुझसे कभी धर्मपत्नी नहीं कहा, हमेशा माँ का संबोधन किया। माताजी कहते हैं, कई बार मैं तो हँस भी जाती हूँ, कहती भी हूँ कि आप ये क्या मजाक कर रहे हैं कि मुझसे माँ कह रहे हैं, मैं तो आपकी पत्नी हूँ। तो अनायास ही एक बार उनके मुँह में से निकल पड़ा कि पत्नी तो कभी-कभी विद्रोही भी हो जाती है और उसके अंदर बदले की भावनाएँ होती हैं, लेकिन माँ के अंदर वो भाव नहीं होते। उसके अंदर बदले की भावना नहीं होती है। वो क्षमाशील होती है और यदि नहीं है तो फिर इसका अर्थ यह है कि आप में कोई कमी है।

वंदनीया माताजी माँ बनकर रहें

मैंने जिस रूप में उन्हें देखा तो वही बाना ओढ़ा, वही बाना मैंने पहना, जो मुझको पहनाया गया। प्रथम बार जो शब्द मुँह से निकले, मैंने कहा कि इन शब्दों को सार्थक करना चाहिए। कैसे रहना चाहिए? एक माँ बन करके। क्या शुरू से ही मैं माँ बन करके आई थी? नहीं बेटे, जैसे एक साधारण महिला और लड़की की ख्वाहिश होती है, वही संभव है मेरी भी रही होगी। ऐसा तो नहीं है कि न हो, लेकिन जब मैं आई और जो मेरी भावनाएँ थीं, मैं कुछ करना चाहती थी, पर दिशा नहीं मालूम थी कि क्या करना चाहिए, पर वो संत जीवन में आए, तो मेरे सारे कपाट खुल गए।

मैंने कहा कि बस, अब मैं धन्य हो गई। अब आगे कदम बढ़ाना है, पीछे की ओर पिछले जीवन की ओर मुड़ करके नहीं देखना है। साधारण गृहस्थ की तरह से, सामान्य गृहस्थ की तरह से, औसत गृहस्थ की तरह से सारी जिंदगी उन सारे नियमों

का पालन करती रही और मैं करती ही क्या? आचार्य जी भी करते रहे। जैसे एक सद्गृहस्थ का जीवन होना चाहिए।

सद्गृहस्थ की विशेषता

सद्गृहस्थ में क्या-क्या विशेषता होती है? सद्गृहस्थ में होती है—बच्चों का पालन-पोषण करना और उनको सुसंस्कारवान बनाना, माँ के प्रति कर्तव्य, पत्नी के प्रति कर्तव्य, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यशील बनाना और उनको आगे बढ़ाना, उनको संस्कार देना। यही धन है, यही दौलत है। उन्होंने कहा कि हमने इसी के सहारे, अपने गुणों के सहारे जिंदगी जी है, बच्चों तुम भी इसी के सहारे जीना।

हम जिस मकान में रहते थे, वह मकान 13/- महीने का था। पीछे 15/- कर दिए थे। अंत में जब हम आए तो हमने उसको 30/- महीना देना शुरू किया। उसकी मरम्मत कराते थे और अपना जीवनयापन करते थे। घर में रूखी-सूखी रोटी खाते थे, लेकिन हमारे दरवाजे से कभी भी, कोई भूखा नहीं गया। आया जरूर भूखा, लेकिन गया नहीं। कुछ नहीं हुआ तो सत्तू खिलाए, खिचड़ी खिलाई, लेकिन खिलाया जरूर और जिन्होंने खाया तो उन्होंने अपने को धन्य माना।

भावनाओं का चमत्कार

बेटे, कितने ही व्यक्ति तो ऐसे भी आए, जो अपने मुँह से तो हम नहीं कहना चाहते हैं, पर अनायास ही मुँह पर बात आ गई है तो क्यों नहीं कहना चाहिए? कही ही जा रही है। तो जो असाध्य रोगी थे, उनसे आचार्य जी ने कहा कि जाओ बेटे, तुम जाओ अपनी माँ के हाथ का बना हुआ खाना। जिनको कि अन्न पचता नहीं था, अभी भी वो व्यक्ति जीवित है। लटूरचंद उसका नाम है। वो असाध्य रोगी था, उसने जब भोजन किया तो वो

15 ही दिन में स्वस्थ हो गया। क्या बात थी? क्यों स्वस्थ हो गया?

कोई जादू था क्या? जादू नहीं था। उसमें हमारी भावनाएँ थीं और वो हमारा भगवान था। वो हमारा देवता था, जो हमारे घर आया था। हमने मन से, आत्मा से उसकी सेवा की और वो खड़ा हो गया। एक नहीं, कितने ही हैं, जो हजारों की तादाद में हैं, जिन्हें परोक्ष रूप से मिला। क्या मिला?

नागार्जुन रसायनशास्त्र के प्रख्यात ज्ञाता थे। उनसे मिलने अनेकों लोग आते तो वे उन्हें जीवन सुधारने व व्यक्तित्व बनाने की शिक्षा दिया करते थे। लोग उनसे बोले—“आप इतने प्रसिद्ध रसायनशास्त्री हैं। आप रसायनशास्त्र की शिक्षा दें तो आपका नाम और फैलेगा।”

नागार्जुन ने उत्तर दिया—
“रसायनशास्त्री तो कोई भी बन सकता है व बना सकता है। अच्छा इनसान बनने के लिए प्रयत्नों की आवश्यकता पड़ती है। हमें अपनी ऊर्जा व मनोयोग इसी दिशा में लगाना चाहिए।”

अनुदान मिला, किसका अनुदान मिला? भावनाओं का मिला। हमें किसका मिला? हमें किसी दूसरे का मिला। हमें अपने गुरु का मिला है।

जो मिला है, वो बाँटा है और वही बाँटते आए हैं। आप कहेंगे कि आपको मिला और आपने बाँटा। हाँ बेटे, यही तो संसार का नियम है। लिया है तो दीजिए, हम तो कहते हैं कि लेने से ज्यादा दीजिए, वो मिलेगा।

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

बेटे, हमको मिलता रहा है। जिनने हमें संस्कार दिए, मैं कहाँ तक आपको बताऊँ? जब गायत्री तपोभूमि का निर्माण हुआ था तो पास में कुछ ज्यादा नहीं था। गायत्री तपोभूमि के लिए जमींदारी के जो बॉन्ड आए थे, वो आचार्य जी ने गायत्री तपोभूमि में लगाए। हमने कहा कि हम क्या करेंगे?

हमारे पास जेवर थे, जो अभी भी कुछ सुरक्षित थे, वे बेच करके उसमें लगा दिए गए। हमने सारे-के-सारे जेवर जो हमारे पास थे, गायत्री तपोभूमि को दे दिए। रिश्तेदारों ने मना किया, घरवालों ने मना किया, पर हमने कहा कि हमारे पास जो दौलत है, वह इतनी है कि उसके सामने करोड़पति भी कम, अरबपति भी कम हैं। हमारे पास दौलत की कोई कमी नहीं है, जो हमने भगवान के रूप में और इनसान के रूप में पाई है। ये दौलत हमारे लिए कम है क्या? भगवान! हमारा इनका साथ बना रहे, बस, हमको कुछ नहीं चाहिए, सब दौलत फीकी है और हमने उसको गायत्री तपोभूमि को दान कर दिया।

सबने कहा, क्यों? हमने कहा कि इसको छाती से लगाने से मतलब है, मुरदे को छाती से लगाना। अरे! यह तो लाश है, इससे मोह किया जाना चाहिए? दौलत से किया जाना चाहिए? यह तो निरर्थक है और यहीं रहने वाला है। हमको तो वो कार्य करना है, जिससे मनुष्य जीवन सार्थक होता हो।

हमको गलत पाठ नहीं पढ़ाना चाहिए। हम अनवरत साधना में लगे हुए हैं। किससे सीखा? मैंने आपसे कहा न कि मैंने उस भगवान से प्रेरणा पाई की जिनके साथ मैं बँधी हूँ और जिनके जीवन की डोर से मेरा जीवन बँधा है।

हम एकदूसरे के बगैर जिंदा नहीं रह सकते, पर फर्ज और कर्तव्य हमको पुकारते रहते हैं। जहाँ

फर्ज और कर्तव्य ने पुकारा तो हमने अपनी भावनाओं को समेटा और उनको बाँधा। हमने कहा—नहीं तुम आगे नहीं बढ़ोगी, पीछे हटोगी, पीछे हटो, कर्तव्य से भावनाएँ कम हैं, कर्तव्य ज्यादा है, फर्ज ज्यादा है। कर्तव्य ने जब-जब पुकारा तब-तब हमने अपनी भावनाओं को दबोचा।

सन् 1960 में जब आचार्य जी अज्ञातवास गए थे तो उन्होंने कहा था कि देखिए सारा पुण्य अब आप ही के जिम्मे आ गया है क्या? जब मैंने सच्चे मन से यह फैसला किया है कि आपका हर कार्य मेरा है और हर कार्य के लिए मेरा कदम आगे

— अवतारों में उच्चस्तरीय वे ही माने जाते हैं, जिनमें संत-सी पवित्रता, सुधारक-सी प्रखरता के साथ ऋषियों जैसी तत्त्वदृष्टि होती है। वे उत्कृष्टता को समर्पित होते हैं। अहंता के परिपोषण में लगने वाली शक्ति समर्पण के बाद उनके पास इतनी अधिक मात्रा में बच जाती है, जिसके आधार पर सामान्य व्यक्ति भी असामान्य कार्य कर दिखाते हैं। — परमपूज्य गुरुदेव

— बड़ेगा तो फिर आप मुझे यहाँ छोड़े जा रहे हैं। उन्होंने कहा कि तुम्हारे जिम्मे ये गायत्री परिवार, युग निर्माण परिवार और अखण्ड ज्योति परिवार है, जिसकी कि तुम लाखों बच्चों की माँ हो।

मेरी पत्नी जरूर हो, लेकिन तुम लाखों बच्चों की माँ हो, उनको सँभालना और यह अखंड दीपक है, जिसको हमने जान से भी प्यारा समझा है और इसके पास बैठ करके उपासना की है। इतनी बड़ी मंजिल मैंने तय की है और इससे ज्ञान प्राप्त किया। इससे मैंने ज्योति पाई है, प्रकाश पाया है, इसकी

सेवा करना तुम्हारा धर्म नहीं है क्या ? मैंने कहा— साहब ! जरूर है। जो आप कहेंगे, वही मुझे मंजूर है और जिस तरीके से उर्मिला बैठी रही थी, उसी तरीके से मैंने अखंड दीपक को जलाकर एक साल ऐसे ही निकाल ले गई।

फिर सन् 1971 में एक वर्ष के लिए गए थे। पहले तो यही था कि तुमको अखण्ड ज्योति कार्यालय रहना है और हमें हिमालय जाना है, तो एक शब्द मैंने कहा था। मैंने कहा कि मैं आपके मार्ग में रोड़ा तो नहीं हूँ, हूँ तो समर्थक, पर अब मैं अलग रहना नहीं चाहती हूँ। यदि आप मुझे जिंदा रखना चाहते हैं, तो वहाँ ले चलिए, जहाँ आप जा रहे हैं। आपके मार्ग में कोई भी रोड़ा नहीं है। अब तक नहीं रहा तो अब क्यों रहेगा ? अब भी नहीं रहेगा।

शांतिकुंज का निर्माण हुआ और मैं शांतिकुंज आ गई। वे एक साल के लिए फिर हिमालय गए,

तो मैंने बच्चों को छोड़ा। जो हरा-भरा परिवार था, सारे परिवार को मैं बिलखते छोड़ करके आई थी। कोई भी माँ अपने बच्चों को इस कदर रोते हुए बिलखते हुए नहीं छोड़ेगी, लेकिन मैंने भावनाओं की अपेक्षा कर्म को ज्यादा श्रेय दिया। बच्चे न मालूम कब तक साथ देंगे ? देंगे भी की नहीं देंगे ? और मैं भी रहूँगी-नहीं रहूँगी, क्या कह सकते हैं ? लेकिन जो फर्ज और जो संस्कार हमें धरोहर रूप में मिले हैं, वो तो हमारे साथ रहेंगे और मैं सहज शांतिकुंज चली आई।

शांतिकुंज में जो भी उनका मार्गदर्शन हुआ, जो भी उनकी आज्ञा हुई, वो सहज स्वीकार हुई। मन से किया। बहुत-से लोग तो ऐसे होते हैं, जो तन से करते रहते हैं, पर मन में एकदूसरे के प्रति आस्था नहीं होती है।

[शेष अगले अंक में समापन]

जीवन की दिशा के विषय में ऊहापोह में फँसा एक व्यक्ति, एक संत की शरण में पहुँचा। उनसे पूछने लगा—“भगवन्! मैं धर्म की शरण में आना चाहता हूँ।” कारण पूछने पर वह संत से बोला—“मेरे ऊपर अनेकों जिम्मेदारियाँ आन पड़ी हैं। उनका बोझ मुझसे नहीं उठता, संन्यासी बन जाने पर मुक्त हो जाऊँगा।”

संत बोले—“वत्स! मनुष्य जन्म लेते ही उत्तरदायित्वों से बँध जाता है। शरीर को स्वस्थ रखना, मन को संतुलित रखना, परिवार में सुसंस्कार देना, समाज के ऋण से मुक्त होना, जैसी अनेक जिम्मेदारियों से मनुष्य बँधा है। इनका निर्वाह ही कर्तव्यपालन है और कर्तव्यपरायणता ही धार्मिकता है।”

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◄

ज्ञान की दीक्षा का पर्व मनाता विश्वविद्यालय



पूज्य गुरुदेव के दूरदर्शी चिंतन एवं वैज्ञानिक अध्यात्म की अवधारणा पर आधारित देव संस्कृति विश्वविद्यालय भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्यों एवं जीवनोपयोगी शिक्षा के माध्यम से व्यक्तित्व निर्माण और राष्ट्र-निर्माण का सतत अभियान चला रहा है। वंदनीया माताजी के जन्मशताब्दी वर्ष तथा अखंड दीपक शताब्दी वर्ष के पावन आयोजनों की शृंखला में विश्वविद्यालय परिसर में ज्ञानदीक्षा समारोह श्रद्धा, गरिमा एवं उत्साह के साथ संपन्न हुआ।

इस अवसर पर भारतीय डाक विभाग द्वारा शांतिकुंज डाकघर की स्थापना के 50 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में प्रथम दिवस आवरण तथा विशेष पिक्टोरियल मोहर जारी कर इस ऐतिहासिक उपलब्धि को राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया गया। कार्यक्रम में निदेशक, डाक सेवाएँ सहित भारतीय डाक विभाग के वरिष्ठ अधिकारी उपस्थित रहे। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के उपाध्यक्ष, कुलसचिव तथा शांतिकुंज के व्यवस्थापक भी विशेष रूप से उपस्थित रहे।

ज्ञानदीक्षा समारोह के दौरान गायत्री परिवार प्रमुख एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के अध्यक्ष श्रद्धेय डॉ. प्रणव पंड्या जी के आशीर्वचन एवं ऑनलाइन मार्गदर्शन के माध्यम से नवप्रवेशी विद्यार्थियों का ज्ञानदीक्षा संस्कार संपन्न हुआ। विद्यार्थियों ने ज्ञान को केवल आजीविका का साधन न मानकर आत्मविकास, चरित्र-निर्माण, राष्ट्रसेवा एवं मानवता के कल्याण के लिए समर्पित करने का संकल्प लिया।

समारोह में विश्वविद्यालय के विभिन्न संकायों के नवप्रवेशी विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक सहभागिता की। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ अर्जित करने वाले पूर्व विद्यार्थियों को सम्मानित किया गया। समाज, प्रशासन, शिक्षा, अनुसंधान, चिकित्सा, उद्यमिता एवं सेवा के विविध क्षेत्रों में उत्कृष्ट योगदान देने वाले पूर्व विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय की संस्कारपरक शिक्षा का प्रेरक प्रतिनिधि बताते हुए सम्मान प्रदान किया गया।

अपने उद्बोधन में उपाध्यक्ष महोदय ने कहा कि ज्ञानदीक्षा केवल शिक्षा का प्रारंभ नहीं, बल्कि जीवन को ज्ञान, संस्कार और उत्तरदायित्व से जोड़ने वाला दिव्य संस्कार है। जन्मशताब्दी वर्ष और अखंड दीपक शताब्दी वर्ष के इस ऐतिहासिक कालखंड में नवप्रवेशी विद्यार्थियों का ज्ञानदीक्षित होना केवल एक शैक्षणिक परंपरा नहीं, बल्कि पूज्यवर के विचारों को अपने जीवन में उतारने का संकल्प है।

उन्होंने यह भी कहा कि शांतिकुंज डाकघर की स्वर्ण जयंती भी इस वैचारिक यात्रा का एक सशक्त प्रतीक है। पिछले पाँच दशकों से यह डाकघर केवल पत्रों का आदान-प्रदान नहीं कर रहा, बल्कि पूज्य गुरुदेव के साहित्य, वंदनीया माताजी के संस्कार संदेश तथा युगनिर्माण आंदोलन की चेतना को देश-विदेश तक पहुँचाने का माध्यम बना हुआ है। भारतीय डाक विभाग द्वारा जारी प्रथम दिवस आवरण एवं विशेष पिक्टोरियल मोहर इस गौरवशाली यात्रा को राष्ट्रीय पहचान प्रदान करते

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

हैं तथा आने वाली पीढ़ियों को इस विरासत से जोड़ने का कार्य करेंगे।

इसी के साथ ही कार्यक्रम के दौरान माननीय केंद्रीय सड़क परिवहन एवं राजमार्ग मंत्री श्री नितिन गडकरी का वीडियो संदेश भी प्रसारित किया गया।

माननीय मंत्री जी ने वंदनीया माताजी के जन्मशताब्दी वर्ष, अखंड दीपक शताब्दी वर्ष एवं ज्ञानदीक्षा समारोह की शुभकामनाएँ देते हुए शांतिकुंज डाकघर की स्वर्ण जयंती को भारतीय डाक सेवा और युगनिर्माण आंदोलन की गौरवपूर्ण साझी विरासत बताया। कार्यक्रम के अंत में भारतीय डाक विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं शांतिकुंज परिवार की ओर से सभी अतिथियों, अधिकारियों एवं उपस्थित श्रद्धालुओं के प्रति आभार व्यक्त किया गया।

विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में विगत दिनों छत्तीसगढ़ के माननीय मुख्यमंत्री श्री विष्णु देव साय जी की धर्मपत्नी श्रीमती कौशल्या साय जी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण किया। इस अवसर पर विश्वविद्यालय के उपाध्यक्ष महोदय ने उनका स्वागत एवं अभिनंदन किया। भ्रमण के दौरान श्रीमती साय ने विश्वविद्यालय में संचालित भारतीय ज्ञान परंपरा, मूल्यनिष्ठ शिक्षा, योग, संस्कृति एवं लोक-मंगल पर आधारित विविध शैक्षणिक और सामाजिक गतिविधियों का अवलोकन किया।

अंतरराष्ट्रीय कार्यशालाओं के आयोजनों के क्रम में हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में रोमानिया के कुलपति एवं प्रख्यात शिक्षाविद् प्रो.

आंद्रेई बुडेस्कु के मार्गदर्शन में आयोजित अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला के समापन सत्र में विश्वविद्यालय के उपाध्यक्ष महोदय मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे।

इस अवसर पर प्रो. बुडेस्कु ने कार्यशाला के अनुभवों को साझा करते हुए कला, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं नवाचार के समन्वित दृष्टिकोण को उच्च शिक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक बताया। उन्होंने कहा कि बहुआयामी शोध और रचनात्मक चिंतन ही वैश्विक चुनौतियों के समाधान का आधार बन सकते हैं।

इसी क्रम में बीते दिनों विश्वविद्यालय में आयोजित यज्ञोपैथी कार्यशाला एवं चिकित्सा शिविर का सफल समापन हुआ। इस अवसर पर प्रतिभागियों को विश्वविद्यालय के उपाध्यक्ष के माध्यम से प्रमाणपत्र प्रदान किए गए। कार्यशाला में देश के विभिन्न राज्यों से आए प्रतिभागियों ने उत्साहपूर्वक सहभागिता करते हुए यज्ञोपैथी एवं समग्र स्वास्थ्य पद्धति का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया। साथ ही जीवनशैली से जुड़ी स्वास्थ्य समस्याओं के लिए विशेषज्ञ चिकित्सकीय परामर्श एवं उपचार का लाभ भी लिया।

विगत दिनों दो दिवसीय तनाव प्रबंधन शिविर के अंतर्गत उत्तराखंड यातायात पुलिस के अधिकारियों एवं पुलिसकर्मियों ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण किया तथा विश्वविद्यालय के उपाध्यक्ष महोदय से भेंट कर उनका प्रेरणादायी मार्गदर्शन भी प्राप्त किया। □

चेतना विस्तार की भूमिका अवतार, महामानव, अग्रदूत, जाग्रत आत्माएँ निभाती हैं। उनका उद्देश्य भी यही होता है। आस्था-संकट का जो मूल उद्गम है—अंतःकरण, वहाँ वे व्यक्ति-व्यक्ति तक पहुँचकर उसके अंदर हलचल मचाती हैं। मरुस्थल बन गए अंतःस्थल में संवेदनाएँ उभारती हैं, आदर्शवादी उत्कृष्टता के प्रति समर्पण की भावना जगाती हैं। अवतार की प्रक्रिया यही है।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

विश्वराष्ट्र का स्वरूप एवं विधान

विश्वराष्ट्र का स्वरूप एवं विधान—नवयुग का नवीन उत्कर्ष बनकर प्रकट होगा। अभी यह विचार निराकार है, जिसे अगले दिनों साकार होना है। वर्तमान समय में यह कथन संभव है कि हर किसी को अटपटा और बेतुका लगे, लेकिन धरती पर देवयुग के अभ्युदय के लिए दिव्यशक्तियों ने यही दैवी विधान रचा है। इसे इक्कीसवीं सदी के आधी उम्र होते-होते क्रमिक रूप से प्रत्यक्ष होते हुए देखा जा सकेगा। इस संबंध में यह सब कौन करेगा? कैसे संभव हो पाएगा? जैसे अनेकों सवालोंने का सटीक उत्तर युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने स्वयं दिया है। यही तो उनकी शतवर्षीय साधना का सुपरिणाम-सत्परिणाम है। यही युगसाधकों की युग-साधना का प्रतिफल है।

वर्ष—1987 ई. में प्रकाशित कुंडलिनी जागरण अंक के लेख 'नवसृजन के निमित्त साधना पराक्रम' में युगऋषि गुरुदेव लिखते हैं—'ऐसे महान प्रयोजन के लिए दैवी शक्ति चाहिए। मानवी शक्ति के दबाव में मनुष्य हाँ-में-हाँ भर मिला सकता है, पर अंतरात्मा के बदल जाने की बात असाधारण है। इसे सच्चे अर्थों में युग-परिवर्तन की आधारभूत शिला कह सकते हैं। परिस्थितियाँ जब बाहरी उपायों—उपचार, तानाशाहों की कठोरता के काबू में नहीं आई; उन्हें भी मनुष्य के निजी संस्कारों के आगे हार माननी पड़ी और उनसे समझौता करना पड़ा, तो फिर अंतरात्मा के भीतर से मंथन और परिवर्तन कितना कठिन और जटिल हो सकता है, इसकी कल्पना करना तक असंभव है।'

किंतु यह भी स्मरण रखने योग्य है कि भगवान के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। यह कलियुग को

सतयुग में बदलता है। त्रेता में धर्म-राज्य की स्थापना करता है। रावण, वृत्रासुर जैसों के मद को चूर्ण-विचूर्ण करता है। सुदामा, विभीषण, सुग्रीव जैसे विपन्नों को सुसंपन्न बनाता है। हारे हुए देवताओं को महाप्रलय का दृश्य दिखाकर उन्हें फिर से दिव्यता से संपन्न करता है और सर्वव्यापी जल में से नई सृष्टि रचकर खड़ी कर देता है। वह मानवोचित विचारों को, मानवीय वर्चस्व की गरिमा को पुनर्जीवित करने के लिए अंतःकरणों में भारी उथल-पुथल कर दे, तो क्या असंभव है? जिसके कौशल से निखिल ब्रह्मांड में ग्रह-तारक अधर में टँगे और घुड़-दौड़ लगाते हुए ऐसा क्रम चला रहे हैं, जिसे देखते हुए आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है; उसके लिए किसी भी आस्तिक का उसके अनुग्रह से संपन्न हो सकना असंभव नहीं मानना चाहिए।

विश्वराष्ट्र की स्थापना भविष्य में होने वाला ऐसा ही परिवर्तन है, जो असंभव होते हुए भी संभव होगा। परमात्मा ने तो एक ही धरती बनाई थी। मनुष्य भी एक तरह का ही बनाया था। धरती के अलग-अलग हिस्से में सूर्य ताप-तपन, जल के प्रवाह की गति एवं वायु के भिन्न-भिन्न वेग से जलवायु अवश्य भिन्न-भिन्न हो गई। इसी भिन्नता के कारण फसलों-फलों एवं खनिजों में भी भिन्नता आई। मनुष्य की कद-काठी, रंग-रूप, लंबाई-छोटाई में भी थोड़ा अंतर आया। वृक्ष-वनस्पतियों के साथ पशु-पक्षियों की किस्में भी बदलीं। यह बदलाव-भिन्नता और अंतर इसलिए आया कि धरती की शोभा, सुषमा, सुगंध, सुरभि अनेकों आयाम में प्रकट हों। धरती के अलग-अलग हिस्सों में फल, फसलों, खनिजों एवं अन्य उत्पादों में अलगाव का

कारण बस इतना था कि मनुष्य मिल-बाँटकर समस्त सुविधाओं का उपयोग करे। सब कुछ मिलकर बाँटने के लिए था, छीना-झपटी करके बाँटवारा करना-कराना इसका मकसद कतई नहीं था। पर परमात्मा व प्रकृति की ज्येष्ठ और श्रेष्ठ संतान कहे जाने वाले मनुष्य ने समझदारी की जगह नासमझी दिखाई। बुद्धिमान होने का सम्मान पाते हुए बुद्धिहीनता का परिचय दिया। उसे मिलकर रहना, आपस में छीना-झपटी की जगह दुःख बाँटाना-सुख बाँटना नहीं आया।

इसी वृत्ति-प्रवृत्ति में उसने जमीन और जल में अनेकों काल्पनिक लकीरें खींच दीं। मेरा-तेरा कहकर सब बाँट दिया। जो कुछ धरती पर था, उसका विभाजन तो हो ही गया। अब तो बारी आकाश व अंतरिक्ष के बाँटवारे की आ गई। धरती को देशों में बाँटा, देश को प्रांतों में बाँट लिया। प्रांत को फिर से अनेकों हिस्सों में बाँटा। अगर यह बाँट-बाँटवारा सुविधा और व्यवस्था के लिए होता, तो भी ठीक था। पर यह सब जाति, क्षेत्र, भाषा, धर्म आदि अनेकों आधारों पर होता गया। इस बाँट और बाँटवारे में धरती के साथ इनसान की इनसानियत भी बाँटती गई। इनसान के द्वारा खिंची धरती पर ये लकीरें उसके अपने हाथ की लकीरों से कई गुना अधिक हो गईं।

अब तो घर-परिवार, साधन-सुविधा, जमीन-जायदाद बाँटते-बाँटते माता-पिता और बच्चे भी बाँटने लगे हैं। बच्चों के अलग होने पर आपस में माता-पिता बाँटते हैं। माता किसके साथ रहेंगी, पिता किसके साथ रहेंगे अथवा दोनों को घर के कूड़े की तरह निकालकर किसी वृद्ध आश्रम में फेंक-पटक दिया जाएगा। जब माता-पिता अलग होते हैं, तो वे बच्चों का बाँट-बाँटवारा करते हैं। उनमें अपनी-अपनी हिस्सेदारी के लिए छीना-झपटी करते हैं। भगवान की बनाई धरती को सूर्यदेवता एक समान उजाला व ऊर्जा देते हैं। वायु सबको एक समान प्राण देती है।

वे किसी के साथ किसी तरह का भेदभाव नहीं करते। हालाँकि मनुष्य ने भारी उपद्रव मचाकर इन्हें भी प्रदूषित कर दिया है। जिस डाल पर बैठा है, उसी को कुल्हाड़ी से काट डालने की मूर्खता करने वाले मनुष्य ने जब सारी हदें पार कर दीं, तब स्वयं भगवान ने हस्तक्षेप करने का निश्चय किया। उन्होंने बाँटवारे की सारी लकीरों को मिटाकर फिर से उसे एक करने का निर्णय लिया है।

विश्वराष्ट्र की स्थापना, परमात्मा का यही निर्णय और निश्चय है। इस निश्चय के फलस्वरूप बनने

..... सब कुछ मिलकर बाँटने के लिए था, छीना-झपटी करके बाँटवारा करना-कराना इसका मकसद कतई नहीं था। पर परमात्मा व प्रकृति की ज्येष्ठ और श्रेष्ठ संतान कहे जाने वाले मनुष्य ने समझदारी की जगह नासमझी दिखाई। बुद्धिमान होने का सम्मान पाते हुए बुद्धिहीनता का परिचय दिया। उसे मिलकर रहना, आपस में छीना-झपटी की जगह दुःख बाँटाना-सुख बाँटना नहीं आया।

..... वाले विश्वराष्ट्र का स्वरूप कैसा होगा ? इस बारे में जागरूक-जन जिज्ञासा कर सकते हैं। इस जिज्ञासा का समाधान सरल है। इसके लिए राष्ट्रों के अस्तित्व में थोड़ी-बहुत ऐतिहासिक और भौगोलिक हेर-फेर अवश्य होगी। सवाल फिर पूछा जाएगा, इसे कौन होने देगा ? तो उत्तर में यहाँ पर यह कहेंगे कि भारतदेश की सभी रियासतें क्या आसानी से भारतीय गणराज्य में शामिल होना चाहती थीं ? इस प्रश्न के उत्तर में उनकी जबरदस्त न होते हुए भी उन्हें हाँ करनी पड़ी। यह परिवर्तन भी कुछ इसी तरह से होगा। अभी हम

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

सबने जम्मू-कश्मीर राज्य की धारा 370 को हटते हुए देखा। एक विधान-एक निशान को सत्य होते हुए देखा। इस परिवर्तन में नेता थोड़े दुःखी हुए, जनता ज्यादा खुश हुई। यह भावी परिवर्तन भी इसी तरह से होगा।

होने वाले व्यापक भौगोलिक परिवर्तन में देश रहेंगे, संस्कृति रहेगी; पर सीमाओं पर सैनिकों का जमावड़ा, आपस में होने वाला तनाव न रहेगा। तब विश्वराष्ट्र का नियंत्रण करने वाली विश्व संस्था बहुत अधिक सुदृढ़-सशक्त होगी। अभी की स्थिति में संयुक्त राष्ट्र संघ की तरह इसकी भूमिका लचर और अधकचरी न रह जाएगी। अगर हम विश्व इतिहास के पन्ने पलटें, तो द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले इस विश्व पंचायत का अस्तित्व न था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह संभव हो पाया।

आगे यह संस्था इतनी अधिक सक्षम और समर्थ होगी कि किसी भी देश के लिए सेना के द्वारा युद्ध रचना संभव न हो सकेगा। सब-की-सब जगह आवाजाही सुगम होगी। विश्व व्यापार ऐसी स्थिति और अवस्था प्राप्त करेगा कि विश्वभर के सभी प्राकृतिक व मानवनिर्मित उत्पाद विश्ववासियों के लिए सुगम व सस्ते होने के साथ सर्वसुलभ हो जाएंगे। अनावश्यक सीमा शुल्क जैसे विवादों का बोझ महँगाई न बढ़ा सकेगी। प्रकृति भी इसमें सहयोगी व सहायक बनेगी। जीवन जीने की आवश्यक वस्तुएँ सभी इतनी प्रचुर मात्रा में होंगी कि किसी का व्ययभार न बढ़ेगा।

अभी धरती माता की जय और जय जगत् जैसे नारे केवल भारतवासी लगाते हैं। तब सभी के मन में धरती व विश्व के लिए भावनाएँ भरी होंगी। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सूत्र की अभी केवल भारत में चर्चा होती है, लेकिन तब इसे धरतीवासी अपनाएँगे, स्वीकारेंगे। भारतदेश के निवासी बीते युगों में इस सत्य को जी चुके हैं। इसलिए भविष्य

में भी उनका यह अनुभव काम आएगा। विश्वराष्ट्र की स्थापना की भावी संरचना में भारतदेश एवं भारतवासियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी। इस संस्थापना के परिणाम—धरतीवासियों के भाषा-क्षेत्र आदि के आधार पर होने वाले झगड़ों को विराम देंगे। भारत विश्वनेतृत्व करते हुए इस असंभावना को संभव करेगा। विश्वराष्ट्र के विधान के सभी सूत्र मानव, प्रकृति व परमात्मा के संवेदना संबंधों के आधार पर विनिर्मित होंगे। इस विधान के स्थापित होने पर झगड़ों के कोई कारण ही न बचेंगे। तब इनके निवारण-निराकरण की आवश्यकता अपने आप मिट जाएगी।

.....
जिस डाल पर बैठा है, उसी को कुल्हाड़ी से काट डालने की मूर्खता करने वाले मनुष्य ने जब सारी हदें पार कर दीं, तब स्वयं भगवान ने हस्तक्षेप करने का निश्चय किया। उन्होंने बँटवारे की सारी लकीरों को मिटाकर फिर से उसे एक करने का निर्णय लिया है।

.....
यहाँ इन पंक्तियों में विश्वराष्ट्र के स्वरूप व विधान को मात्र उतना ही बताया जा रहा है, जितना जनमानस की जागरूकता के लिए आवश्यक है। युगऋषि गुरुदेव की शतवर्षीय साधना के फलितार्थ अतिव्यापक हैं। इनका जीवन और जगत् पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ना है। उन्होंने स्वयं कहा था—
“विश्व राष्ट्र के स्वरूप व विधान की वर्णमाला लिखने वाली असंख्य क्रांतियाँ मालगाड़ी के डब्बों की तरह आएँगी, जो आएँगी और आती चली जाएँगी। अंतरिक्ष में इसके लिए प्रकाश के चक्रवाती बवंडर उठेंगे, जो धरती पर इस असंभव को अनायास संभव बना देंगे।” इस कार्य के बाधा-व्यतिक्रम, गतिरोध-प्रतिरोध हटाने के लिए ही वर्ष-2026 ई. से वर्ष-2050 ई. की चौबीसवर्षीय साधना-यात्रा का निर्धारण किया गया है। □

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

महाकाल का आवाहन सुनें

प्रज्ञा परिवार के उत्सवों में जिन मूल्यों-विनम्रता, सरलता, शुचिता और आत्मीयता को प्रधानता दी जाती है, उन्हें जीवन में उतारने वाले ही सच्चे अर्थों में सुखी होते हैं। ऐसे लोग अपने व्यक्तित्व से स्वयं भी आनंद पाते हैं और अपने वातावरण को भी प्रकाशित करते हैं।

जब परिवारों में इन आदर्शों का अभाव बढ़ने लगता है, तब आपसी कटुता, अविश्वास और तनाव जन्म लेते हैं। मनुष्य की प्रकृति में यदि उग्रता और जल्दी क्रुद्ध होने की प्रवृत्ति हावी हो तो घर का वातावरण असहनीय बन जाता है।

सुख-शांति की चाह रखने वाले परिवारों के लिए यह आवश्यक है वे अपने आचरण, व्यवहार और भावनाओं पर संयम रखें। प्रज्ञा परिवार में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जो अपने संयम, सहनशीलता और सकारात्मक दृष्टि के कारण प्रेरणास्त्रोत बने हैं।

कठिन परिस्थितियों में भी जिन्होंने धैर्य रखा, वही जीवन में सच्चे अर्थों में सफल हुए। यदि परिवार में शांति चाहिए तो मन को कठोर नहीं, कोमल और समझदार बनाना होगा। घर-परिवार का माहौल तभी सुधरेगा, जब हम अपने क्रोध, कटुता और अहं को पीछे छोड़कर प्रेम, सहानुभूति और सहयोग की भूमिका अपनाएँ।

इन दिनों महाकाल द्वारा ऐसे ही व्यक्तित्वों की आवश्यकता है, जो समाज को आदर्शों की दिशा दिखा सकें। जिनके हृदय में समर्पण, सेवा

और संवेदनशीलता हो, वही इस युगधर्म को निभा सकते हैं। आज वातावरण में विषमता, तनाव और असंतुलन बढ़ा है, ऐसे में आवश्यक है कि जाग्रत आत्माएँ आगे आएँ और अपने जीवन का श्रेष्ठतम अंश समाज के लिए समर्पित करें।

व्यक्ति यदि अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर जनहित में कुछ अर्पित करे तो उसका यह त्याग न केवल विश्व का कल्याण करेगा, बल्कि स्वयं उसके जीवन में भी नई प्रसन्नता और संतोष भर

उद्देश्यसम्पूर्यर्थ योगसाधनवत् सदा।

कर्म कर्तव्यं यत्रास्ति न हि चेत्फलस्ततः ॥

अर्थात् कर्म को सदुद्देश्य की तरह योग-साधना की तरह किया जाना चाहिए।

देगा। हमें यह समझना चाहिए कि साधारण लोग वही महान बनते हैं, जो अपने भीतर से श्रेष्ठ गुणों को जाग्रत करते हैं।

क्षणिक कठिनाइयों से घबराए बिना, हमें आत्मविश्वास के साथ यह संकल्प लेना चाहिए कि—‘मैं अपने युग की आवश्यकता बनूँगा और समाज के उत्थान में अपना योगदान अवश्य दूँगा।’ समय की पुकार है कि हम जागें, आगे बढ़ें और अपने कर्तव्य को पहचानें। यदि हम सब मिलकर अपने-अपने स्तर का सद्भावना, सेवा और संस्कारों को वैभव दें तो निश्चित ही एक उज्ज्वल और शांतिमय समाज का निर्माण संभव है। □

► ‘नारी सशक्तीकरण’ वर्ष ◀

मनोविग्रह



मन को मनुष्य का मित्र और शत्रु, दोनों ही कहा गया है। यदि मन अनुकूल है तो इससे बड़ा कोई मित्र नहीं है और यदि मन को खुला छोड़ दिया जाए, इसके बहकावे में आ जाया जाए और इसे मनमानी करने की छूट दे दी जाए तो फिर मन से बड़ा कोई शत्रु भी नहीं। ऐसा मन व्यक्ति को भटकने के लिए विवश करता है, जीवन-लक्ष्य से वंचित रखता है।

आश्चर्य नहीं कि ऐसे में व्यक्ति मानवीय गरिमा की दृष्टि से पथभ्रष्ट हो जाता है व साथ ही एक अर्थहीन जीवन जीने के लिए अभिशप्त होता है, जिसे यदि समय रहते सँभाला नहीं गया तो व्यक्ति का जीवन नरकतुल्य बनना तय है। मन के सही नियोजन के अभाव में जीवन की यह दुर्गति स्वाभाविक है।

कहा भी गया है कि खाली मन शैतान का घर। यदि जीवन-लक्ष्य स्पष्ट नहीं है, नींद व स्वप्न में भी जगाने वाला ध्येय साथ में नहीं है, जीवन या मरण की त्वरा से युक्त उच्चतर लक्ष्य पास में नहीं है तो फिर मन का भटकना तय है और यदि उसके अतिरिक्त आदतें बिगड़ी हुई हैं, कुसंस्कारों का काला साया साथ में है तो फिर ऐसे में उस व्यक्ति की स्थिति बिगड़ैल घोड़े पर सवार व्यक्ति जैसी हो जाती है, जिसे घोड़ा न जाने कब व कहाँ ले जाकर पटक दे।

ऐसे में मन की जो महान शक्तियाँ हैं, उनके उपयोग से व्यक्ति वंचित रह जाता है। इसकी उछल-कूद में ही एक लक्ष्य से दूसरे और फिर दूसरे से तीसरे में भटकना व्यक्ति की नियति बन जाती है।

संसार में कहने लायक कुछ उपलब्धियों की चकाचौंध यदि एकत्रित कर भी ली जाए, लेकिन व्यक्ति का अंतःकरण उस संतुष्टि, प्रसन्नता एवं शांति से वंचित है, जिसको मानवीय जीवन का मूल उद्देश्य माना गया है—तो वह उपलब्धियाँ निरर्थक ही सिद्ध होती हैं। जिस कार्य के लिए ईश्वर ने यह सुरदुर्लभ मनुष्य जीवन देकर इस धरती पर भेजा था, वह भी मन की मनमानी के चलते पीछे छूट जाता है।

प्रश्न उठता है कि मन की मनमानी कैसे रुके? इसका सही दिशा में नियोजन कैसे हो? यह मन अर्थपूर्ण जीवन-ध्येय के साथ कैसे जुड़े? इन प्रश्नों का उत्तर महत्त्वपूर्ण हो जाता है। सर्वप्रथम मन का हर पल सक्रिय रहना आवश्यक है। यह किसी भी पल खाली न रहे। अथक श्रम एवं प्रचंड पुरुषार्थ जीवन की परिभाषा बननी चाहिए, लेकिन इससे भी महत्त्वपूर्ण है, पुरुषार्थ की सही दिशा।

इसके लिए जीवन-लक्ष्य का स्पष्ट होना अभीष्ट है, जो व्यक्ति की रुचि, स्वभाव एवं मौलिक क्षमताओं के साथ जुड़ा हुआ हो, लेकिन लक्ष्य इतना बड़ा भी न हो कि व्यक्ति आगे बढ़ने का साहस ही न कर सके और मात्र कपोल-कल्पनाओं में खोया रहकर, यथार्थ से कटा जीवन शेखचिल्ली की तरह से जीने लगे तो वह जग-हँसाई का पात्र बन जाता है।

इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि मन, वचन और कर्म में एकता साधी जाए। बड़े लक्ष्य को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटने और एक व्यवस्थित क्रम में इसको पूरा करने की सुविचारित योजना पर काम किया जाए और छोटे लक्ष्य में पूरी

दत्तचित्तता के साथ संलग्न होकर क्रमिक रूप से बड़े लक्ष्य की प्राप्ति की ओर बढ़ा जाए। मन के इस ध्येयनिष्ठ नियोजन के साथ इसकी सारी शक्तियाँ लक्ष्यप्राप्ति में जुट जाती हैं और व्यक्ति सार्थकता की अनुभूति पाने लगता है।

लक्ष्य के संदर्भ में यह भी आवश्यक है कि यह मात्र वैयक्तिक स्वार्थ एवं अहंतुष्टि तक सीमित न हो, इसके साथ व्यापक जनहित भी जुड़ा हुआ हो तभी इसके साथ प्रसन्नता, शांति एवं आनंद भरी सार्थकता का जीवन संभव होगा, अन्यथा अहं केंद्रित लक्ष्य व्यक्ति को इनसे वंचित रखता है और एक खालीपन अंतःकरण को कचोटता रहता है।

लक्ष्यसिद्धि में चंचल मन पर नियंत्रण आवश्यक हो जाता है। यह जिस अनुपात में सिद्ध होगा, उसी अनुपात में जीवन की सार्थकता एवं सफलता सिद्ध होगी। इसके लिए इंद्रियों सहित मन पर बुद्धि एवं विवेक का नियंत्रण आवश्यक हो जाता है; क्योंकि मन इंद्रियों के माध्यम से ही चालित होता है।

इनके नियंत्रण में थोड़ी-सी भी ढील एवं लापरवाही जीवन उत्कर्ष की दिशा में भारी अवरोध सिद्ध होता है। अंदर से डाँवाडोल स्थिति में फिर बाहर की हलकी-सी भी चुनौती भरी अग्नि परीक्षा लग सकती है। इंद्रियों की स्वाभाविक रुचि सुख-भोग लिप्सा की ओर रहती है। इन पर नियंत्रण के लिए मन पर अनुशासन आवश्यक है, लेकिन यहाँ यह भी ध्यान रखा जाए कि इस प्रक्रिया में अत्यधिक कठोरता विपरीत परिणाम भी ला सकती है।

प्रायः देखा गया है कि संयम-तप के अतिवादी प्रयोग एक सीमा के बाद मन व इंद्रियों के विद्रोह के रूप में सामने आते हैं और व्यक्ति उन भोगों में और गहनता से लिप्त हो जाता है, जो व्यक्ति को इच्छित परिणाम के विपरीत कहीं और ही ले जाकर पटक देते हैं और व्यक्ति का जीवन उन्नति की ऊँचाइयों के बजाय पतन के गर्त में समाने लगता है।

मन के अनुशासन में विवेक एवं संकल्प शक्ति का भरपूर उपयोग करते हुए मध्यम मार्ग का वरण ही श्रेष्ठ रहता है। शनैः-शनैः मन व इंद्रियों पर निग्रह सिद्ध होने लगता है। 'एक आँख प्यार की और एक सुधार की' वाली उक्ति ही दीर्घकालीन दृष्टि से प्रभावी रहती है। मन को प्यार से समझाने के साथ इसे रुचिकर कार्य में लगाने से यह सहज ही अनुशासन की जद में आ जाता है, एकाग्र हो जाता है और फिर कुछ समय पश्चात जीवन में इसके अभीष्ट परिणाम आने प्रारंभ हो जाते हैं।

मन को नियंत्रित करने के लिए शास्त्रों में अभ्यास एवं वैराग्य के सूत्र दिए गए हैं। जो मन के आध्यात्मिक चिंतन में लगाने से सहज प्राप्य हो जाते हैं। यदि जीवन के सुख-भोगों की निस्सारता समझ में आने लगे तो समझो कि मन के निग्रह का एक बड़ा कार्य संपन्न हो चला। साथ ही यदि जीवन के आत्यंतिक परिष्कार की त्वरा जोर पकड़ने लगे और समर्थ गुरु के साथ अंतरात्मा के तार जुड़ने लगे तो फिर मन का निग्रह स्वतः होने लगेगा।

तब मन गुरु-कार्य को ईश्वरीय कार्य मानते हुए जीवन एक उच्चतर ध्येय में निमग्न रहने लगेगा। इसमें शरीर का स्वस्थ होना एक महत्वपूर्ण आधार है। रोगी तन में, सबल मन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। संयमित जीवन एवं अनुशासित दिनचर्या के आधार पर तन-मन को स्वस्थ एवं नीरोग रखा जा सकता है। बाकी प्रारब्धजन्य तन-मन की आधि-व्याधियों को फिर चिकित्सकीय उपचार के साथ आध्यात्मिक चिंतन एवं आत्मबल के आधार पर सँभाला जा सकता है।

सारतः मनोनिग्रह एक समयसाध्य कार्य है, जो धैर्य, साहस एवं सूझ की माँग करता है, लेकिन इसकी शक्तियों का सुनियोजन जीवन की दिशा को बदलने वाला प्रयोग सिद्ध होता है, जिसके साथ जीवन की बगिया सुखद फल-फूलों एवं स्वर्गीय अनुभूति के साथ फलित होने लगती है। □

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

जन्मशताब्दी वर्ष आ गया

जन्मशताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया।
सद्गुरु का अनुपम शुभ चिंतन, ही जन-जन के हृदय समा गया ॥

प्रखर शिष्य ही गुरु कार्य को, दिनचर्या का अंग बनाते।
अनुकरणीय कृतित्व बनाकर, युवजन को आदर्श दिखाते ॥
चमक उठा उसका जीवन, जो पारस स्पर्श पा गया।
जन्मशताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया ॥

देव संस्कृति के निर्माता, यज्ञ पिता गायत्री माता।
अन्य नहीं कोई हर जन ही, निज जीवन के भाग्य विधाता ॥
आत्म-विजेता वही कि जिसको, जीवन संघर्ष भा गया।
जन्मशताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया ॥

काया तो मानव की पाई, पर चिंतन से रहे अधूरे।
सद्गुरु का सान्निध्य मिला तो, हो गए सकल मनोरथ पूरे ॥
समयदान और अंशदान कर, जप-तप का उत्कर्ष पा गया।
जन्मशताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया ॥

सद्विवेक अपनाया हमने, कुरीतियों से नाता टूटा।
युगसाहित्य के स्वाध्याय से, सच्चिंतन-धन सबने लूटा ॥
भक्त वही जो जनसेवा में, ही निज प्रभु का दर्श पा गया।
जन्मशताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया ॥

कुप्रवृत्तियाँ दूर हटाकर, सही दिशा में मन को मोड़ा।
मित्रों व रिश्ते-नातों को, सद्गुरु के चिंतन से जोड़ा ॥
सघन तमस् में भ्रमित जगत् यह, ऋषिवर का आदर्श पा गया।
जन्मशताब्दी वर्ष आ गया, अखिल जगत् में हर्ष छा गया ॥

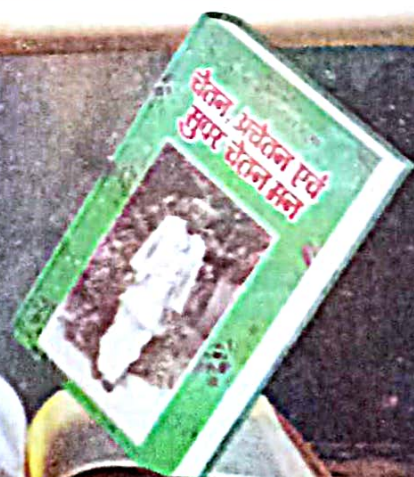
—चक्रेश पाण्डेय

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
के
समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

चेतन , अचेतन एवं
सुपर चेतन मन

- चेतन मन क्या है ?
- अचेतन मन का परिवर्द्धन परिष्कार ।
- सुपर चेतन और जीवन- मुक्ति ।
- व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली सूक्ष्मशक्तियाँ ।
- परिष्कृत चेतन तत्त्व की अनुभूतियाँ ।
- आत्मचेतना विराट की प्रतिनिधि ।



अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52



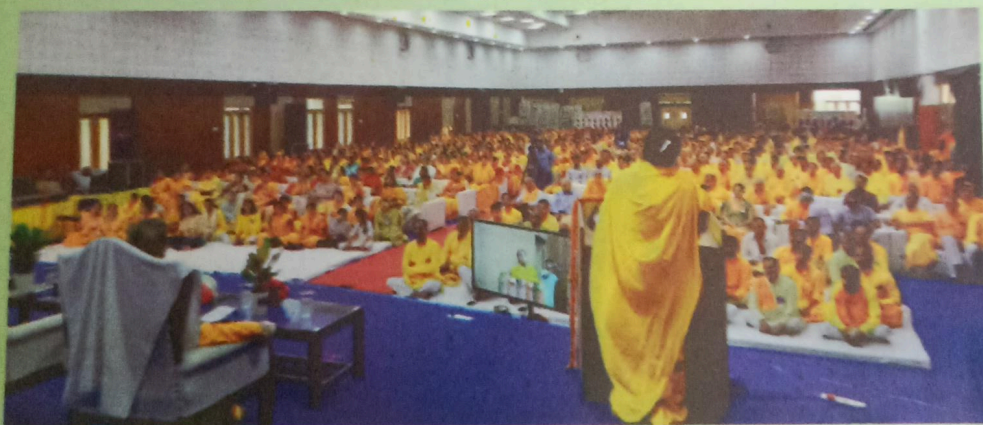
www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 09 / 2026

Regd. No. Mathura - 025/2024-2026

Licensed to Post without Prepayment

No. : Agra/WPP - 08/2024-2026



जन्मशताब्दी वर्ष - 2026 के अंतर्गत उत्तर प्रदेश के नोएडा सेक्टर-12 में
'नारी जागरण से राष्ट्र जागरण' विषय पर विराट कार्यकर्ता सम्मेलन का आयोजन किया गया।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान,
बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-बुंदेलखण्ड रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565-2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ई-मेल — akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org